जरा सोचो तो...?

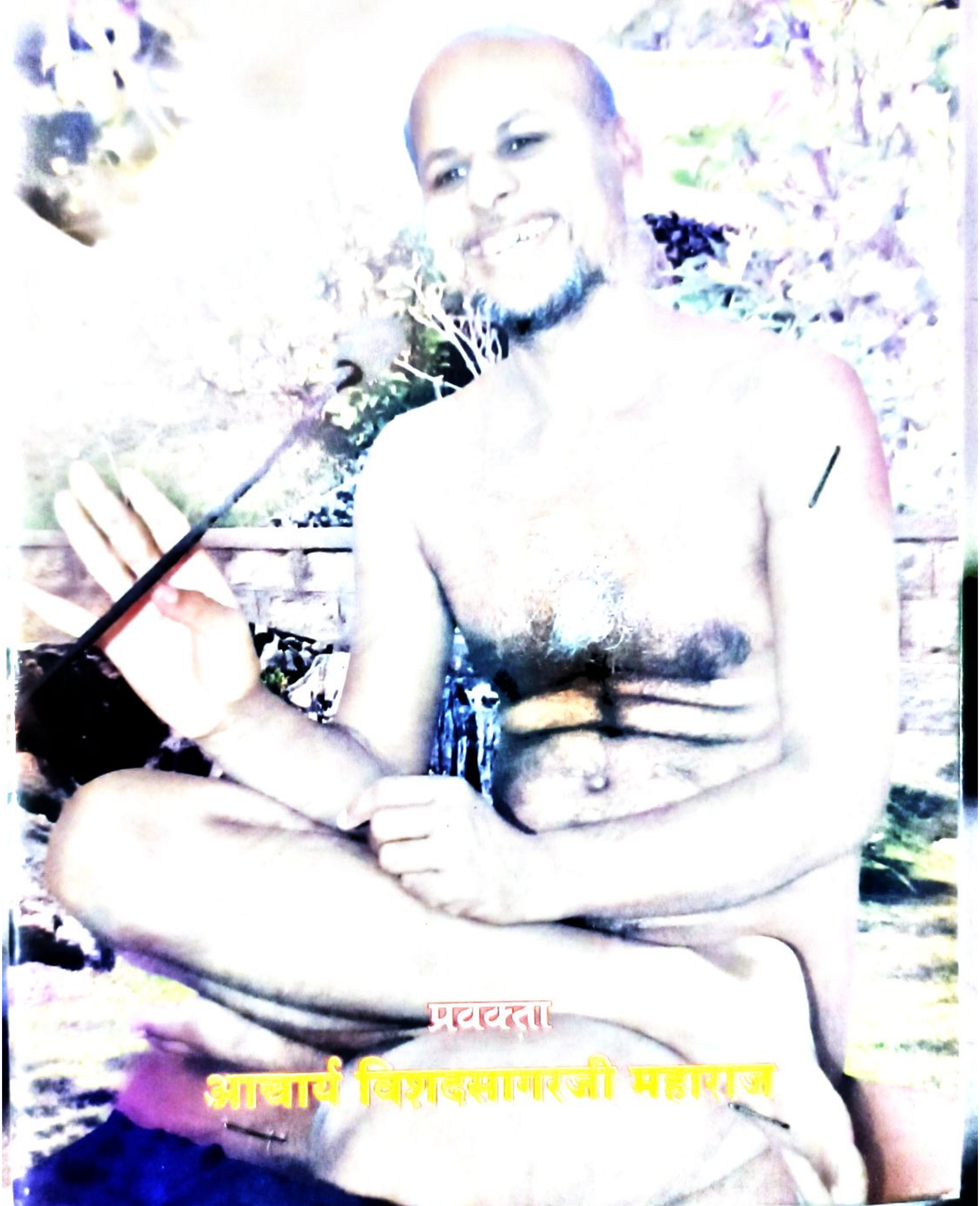

प्रवक्ता

आचार्य विशदसागरजी महाराज

जरा सोचो तो?

प्रवक्ता :

परम पूज्य क्षमामूर्ति, साहित्य रत्नाकर

आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज

अपनी बात

'अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥'

अनेक प्रकार के संदेहों को दूर करने वाला तथा परोक्ष बातों को दर्शाने वाला शास्त्र रूपी नेत्र जिसके पास नहीं है वह अंधा ही है।

जिस प्रकार विद्यार्थी अनेक पुस्तकें प्राप्त करता हुआ भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता है और अध्यापक के द्वारा सिखाए जाने पर बिना पुस्तक के भी कुछ शब्दों को कागज पर अंकित करके अनेक शास्त्रों का ज्ञाता बन जाता है क्योंकि अध्यापक की भावाभिव्यक्ति विद्यार्थी के लिए भावों से जोड़ने का कार्य करती है। जैसा कि मूक बधिर को शारीरिक चेष्टाओं और भावाभिव्यक्ति के द्वारा ज्ञानाध्ययन के द्वारा योग्य बनाया जाता है। उसी प्रकार संतों का उपदेश व अभिव्यक्ति व्यक्ति के लिए सद्ज्ञान और सदाचरण की ओर प्रेरित करती है। एक बार सुनने के बाद पुन: वही विषय पढ़ने को प्राप्त हो जाये तो प्रवचन की अभिव्यक्ति जागृत हो जाती है इस हेतु संघस्थ ब्रह्मचारिणी बहिनों के द्वारा प्रवचन का संकलन किया गया है।

जीवन की खाना पूर्ति करने के लिए इन्सान भागमभाग में पड़ा है ऐसी स्थिति में जबकि इंसान को शांतिपूर्वक भोजन का भी समय प्राप्त नहीं है फिर भजन को कौन पूछता? गृहस्थी की खानापूर्ति में दिन-रात पूर्ण हो जाते हैं वह इन्सान शास्त्र स्वाध्याय कैसे करें। ऐसे लोगों के लिए जो धर्म सूत्रों को प्राप्त कर शुभ उपयोग में लगना चाहते है उन्हें यह पुस्तक प्रस्तुत है -

इससे अवश्य ही साधर्मी जन लाभ प्राप्त करेंगे क्योंकि अनेक शास्त्रों को पढ़ने में लोग प्रमाद करते है शास्त्रों का सार और इन्सान की जीवन चर्या किस प्रकार पूर्ण हो उसके लिए यह पुस्तक कुंजी का कार्य करेगी।

आचार्य विशद सागर

वेदी प्रतिष्ठा समारोह, प्रताप नगर, सेक्टर-5, सांगानेर, जयपुर (राज.)

जिंदगी क्या है ?

बाँट दे हर्ष अपना सभी के लिए ।
है उचित बस यही आदमी के लिए ॥
आज तू है बड़ा यह न अभिमान कर ।
प्रेम सम्पत्ति है जिन्दगी के लिए ॥
हृदय मन्दिर है इसमें जगह कम नहीं ।
खोल दे द्वार इसके सभी के लिए ॥
बन सभी का तू औ सबको अपना बना ।
दीप की भाँति जल रोशनी के लिए ॥
धार ले आचरण जिदंगी में अरे! ।
ये है पूँजी विशद वन्दगी के लिए ॥

मुक्तक

कभी किनारा कभी धार है यह जिन्दगी ।
कभी घृणा और कभी प्यार है यह जिंदगी ॥
जब जैसा हो तब वैसा स्वीकार करो प्यारे भाई ।
कभी जीत है तो कभी हार है यह जिन्दगी ॥
जिंदगी जीत है सभी जीकर चले जाते हैं ।
सुख से नहीं तो दुख पीकर के चले जाते हैं ॥

इंसान का धर्म

अभद प्रदायक जग जीवों का दयावन्त दुख का हर्ता ।
स्वर्ग मोक्ष का साधक अनुपम मन वाञ्छित सुख का कर्ता ॥
सकल विमल शुभ दिव्य तीर्थ के अधिपति पावन हितकारी ।
जिनवर कथित धर्म है पावन इस जग में मंगलकारी ॥

एक दार्शनिक रास्ते में झूमता हुआ बड़बड़ाता हुआ चला जा रहा था । आगे बढ़ते हुए एक बगीचे में प्रवेश कर जाता है वहाँ पर काम करने वाले बागवान ने दार्शनिक को देखकर पूछा तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ? क्या करते हो ? सुनकर दार्शनिक चौंका और ठहाका मारकर हसँने लगा शांत होने पर बोला, मैं कौन हूँ ? कहाँ रहता हूँ ? क्या करता हूँ ? मुझे पता नहीं है।

मैं मनुष्य हूँ, बच्चों का पिता हूँ, पत्नि का पति हूँ, बहिन का भाई हूँ, माँ-पिता का पुत्र हूँ, पुत्र-पुत्रियों का पिता हूँ, बहनोई का साला हूँ और साले का बहनोई हूँ मामों का भान्जा हूँ, भान्जों का मामा हूँ, पोते का दादा हूँ, दादा का पोता हूँ, नाती का नाना हूँ नाना का पोता हूँ, गुरू का शिष्य हूँ, शिष्यों का गुरू हूँ मुझे पता नहीं मैं कौन हूँ ?

बागवान ने पुनः प्रश्न किया भाई यह क्या बकवास है? मनुष्य है किन्तु तू कौन है हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बुद्ध, जैन इत्यादि ।

दार्शनिक अपने शरीर को देखकर पुनः ठहाका मारकर हँसता है। मैं हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बुद्ध, जैन नहीं कहीं नहीं लिखा है,

मैं हिन्दु ! नहीं, मैं मुस्लिम ! नहीं, मैं ईसाई नहीं, मैं सिक्ख ! नहीं, मैं जैन ! नहीं मैं मनुष्य हूँ- मनुष्य आत्मा, इन्सान हूँ ।

पुनः बागवान ने पूछा आप कौन हैं सेठ हैं राजा हैं मंत्री हैं कर्मचारी हैं या सैनिक हैं इत्यादि सुनकर दार्शनिक चौंका और कहा-मैं सेठ, राजा, मंत्री कर्मचारी, सैनिक, नहीं-नहीं मैं कुछ भी नहीं-मैं कुछ भी नहीं हूँ मैं तो मात्र एक मनुष्य हूँ ।

अन्त में बागवान ने कहा- मेरा मतलब है कि आपका धर्म क्या है?

यह सुनकर दार्शनिक ने कहा - मैं मनुष्य हूँ तो मानवता मेरा धर्म है। इन्सान हूँ तो इन्सानियत मेरा धर्म है इंसान से प्रेम , भाई-चारा, सहृदयता, मेरा धर्म है । प्राणी मात्र के प्रति करूणा मेरा धर्म है भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, रोगी को औषधि के साधन जुटाना मेरा धर्म है।

जहाँ धर्म की चर्चा आती है तो वहीं उलझन पैदा हो जाती है आखिर धर्म क्या है? कोई हिन्दू धर्म कहता है कोई मुस्लिम धर्म कहता है कोई जैन धर्म कहता है कोई सिक्ख धर्म कहता है तो कोई ईसाई धर्म कहता है।

अब किसे धर्म माने इस बात को लेकर एक घटना याद आती है। एक बार एक दार्शनिक ने विचार किया आज चारों ओर धर्म के नाम पर दंगे हो रहे हैं लोग मर रहे हैं जन धन की हानि हो रही है सारे लोक में अशान्ति छाई हुई है, शान्ति के लिए धर्म को आधार माना गया है। यह हमारे पूर्वज कहते हैं और शास्त्रों में भी यही कथन है तथा हर धर्म प्रेमी भी यही बात करते हैं कि धर्म करने से शान्ति मिलती है, तो उस धर्म की खोज की जाए जिससे विश्व में शान्ति का वातावरण कायम हो सके । दार्शनिक ने सभी धर्मों के संत पादरियों आदि को एकत्र कर मीटिंग की उसमें प्रस्ताव

रख। गया कि कोई ऐसा धर्म स्थापित हो, जो विश्व शान्ति प्रदान कर सके, सभी के लिए यह बात बहुत अच्छी लगी सभी ने खुश होकर उस बात की सराहना की किन्तु प्रश्न उत्पन्न हुआ कि वह धर्म कौन सा हो तो सभी अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार धर्म को आगे रखने के लिए तैयार हो गये और शांति की खोज करने वाले धर्म के स्थान पर भी अशांति की बात खड़ी हो गयी । तब दार्शनिक ने कहा भाई सभी शांत हो जाए और जो हम कहे वह बात सुनो । चुनाव कर ले बहुमत जिसके लिए प्राप्त हो उस धर्म का मंदिर नगर के बीच स्थान पर खड़ा किया जाएगा । सभी लोग उस स्थान पर परमात्मा की भक्ति करने के लिए जाँएगे । बात तय हो गई स्थल निश्चित करके दूसरे दिन पूजन का समय दिया कि प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में हिन्दू धर्म के लोगों को पूजन करने का बहुमत प्राप्त है।

अतः उस मंदिर की पूजा अर्चना करने सभी लोग जाएगें किन्तु प्रातः देखा गया कि वहाँ पर मात्र हिन्दू मान्यता वाले लोग ही पूजा भक्ति करने के लिए जा रहे हैं। न मुस्लिम है न सिक्ख है ईसाई न बुद्ध न जैन आदि कोई नहीं ।

दार्शनिक की भावना थी सारे धर्मावलम्बियों को एक मंच पर कैसे लाया जाए पुनः प्रयास किया । बौद्ध मंदिर तैयार करके सभी को आराधना के लिए आमंत्रण दिया गया। किन्तु पुनः वही स्थिति थी, मात्र बुद्ध धर्मावलम्बी उस स्थान पर जाते दिखायी दिये और कोई नहीं था । बड़ी मुश्किल की बात हो रही थी क्या करना चाहिए? पुनः जैन धर्मानुसार जिनालय तैयार किया किन्तु देखा मात्र जैनधर्म मानने वाले लोग ही उस स्थान पर पूजन पाठ करने हेतु जाते दिखाई दिये शेष कोई नहीं । दार्शनिक ने क्रमशः सभी धर्मायतन तैयार कर लोगों को एक

मंच पर एकत्रित करने का प्रयास किया किन्तु कोई सफलता नहीं मिली । अंत में दार्शनिक ने एक मंच पर एक स्थान पर जाति भेद, मिटाकर कहाँ कैसे लोग एकत्रित हो सकते हैं? विचार कर उस स्थान से धर्मायतन को समाप्त कर क्रमशः 10-15 बाथरूम तैयार करवा दिए दूसरे दिन देखा लोगों की लाइन लगी है। क्या हिन्दू, क्या मुस्लिम, क्या जैन, क्या बुद्ध सभी भेदभाव छोड़कर उस स्थान पर पहुँच रहे है।

है न आश्चर्य की बात, आज इन्सान धर्म के नाम पर भेद कर रहा है लड़ता है, झगड़ता है, मरने-मारने को तैयार हो जाता है। खून-खराबा कर देता है किन्तु अन्य सभी कार्यों में एक हो जाता है । शराब की दुकान में एक साथ बैठकर शराब पीकर आ जाते कोई झगड़ा नहीं करते हैं। लोग सरिता का बहता हुआ निर्मल जल नहीं ग्रहण करते हैं बल्कि घाटों पर लड़ते हैं यह मेरा घाट है यह तुम्हारा घाट है जबकि घाट पर लड़ने वाला प्यासा रह जाता है। और झगड़कर स्वयं की क्षति कर लेता है। भगवान महावीर ने कहा-भाई घाट को नहीं जल को महत्व देना होगा। जो जल को महत्व देता है वह प्यास बुझा पाता है। जो घाट के पीछे झगड़ता है वह प्यासा ही रह जाता है।

हमने देखा सागर भी प्यासे तक चलकर आता है । भाग्यहीन है फिर भी जो प्यासा रह जाता है।

जब कभी हम धर्म की बात करते हैं तो सभी अनेक प्रकार से धर्म की परिभाषा देने लगते है बच्चों से पूछें तो वह कहते हैं पढ़ना धर्म है अध्यापक से पूछें तो वह कहते पढ़ाना धर्म है नेता से पूँछे तो वह कहता देश सेवाधर्म है अथवा पूर्व में कहा हुआ हिन्दु, मुस्लिम, जैन आदि धर्म यदि किसी पण्डित, विद्वान से पूँछें तो वह घिसी-पिटी अन्य स्थानों से

खोजी हुई परिभाषाएँ लेकर बैठ जाते हैं किन्तु हमारा सोचना है कि धर्म की एक ऐसी परिभाषा प्राप्त हो जो सभी के लिए स्वीकार हो, सभी लोग उसे मानने को तैयार हों। वह परिभाषा मेरी दृष्टि से यह है कि - ''**कर्तव्यमेव धर्मा:**'' अर्थात् कर्तव्य ही धर्म है यह एक ऐसी परिभाषा है जो हर इन्सान को स्वीकार होगी और हर स्थान पर घटित भी हो जाती है।

चार वर्ण प्रत्येक इंसान के अंदर :- आज चारों ओर वर्ण भेद की नीति फैल रही है। कहीं कोई ब्राह्मण की बात करता है तो कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्र की बात करता है आज तो राजनीति में भी इसका बोलवाला देखा जाता है किन्तु भगवान महावीर कहते हैं कि यह सभी आपके अंदर हैं न कोई ब्राह्मण है, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र। इंसान का कर्म और धर्म ही ब्राह्मण और क्षत्रिय है इस अवसर्पिणी काल में जब भोग भूमि का अंत हुआ और भगवान ऋषभ देव ने जन्म लिया तब कल्पवृक्षों ने फल देना बंद कर दिया । लोग भूख प्यास से व्याकुल होने लगे । जंगलों में रहने वाले पशुओं का आतंक बढ़ रहा था। लोग भगवान ऋषभदेव के पास पहुँचे प्रभु रक्षा करो । हम लोग भूखें मर रहे हैं, कुछ खाने के लिए नहीं, कल्पवृक्षो ने फल देना बंद कर दिया है तब प्रभु आदिनाथ ने लोगों को षट्कर्म का उपदेश दिया था । भाई यह अवसर्पिणी काल है अब भोगभूमि समाप्त हो चुकी है। कर्मभूमि प्रारम्भ हो गई है और कर्मभूमि का मतलब है कर्म करो तभी फल प्राप्त होगा और उस समय असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, कला और शिल्प का उपदेश दिया था । उसी समय तीन वर्ण स्थापित किए गए थे वह भी कर्म के आधार पर, जब पशुओं का आतंक बढ़ा हुआ

था तब प्रभु ने कहा असि के द्वारा खूंखार जानवरों से स्वयं की एवं जो दीन हीन हैं उनकी रक्षा करनी चाहिए । जो रक्षा के काम में आगे आये उन्हें क्षत्रिय संज्ञा दी । कुछ लोगों ने वस्तु विनिमय का कार्य प्रारंभ किया उन्हें वैश्य संज्ञा से प्रचारित किया एवं उन दोनों वर्णों के लोगों की सेवा और सहयोग करने वाले को शूद्र वर्ण की संज्ञा से घोषित किया । कुछ समय पश्चात् ऋषभनाथ के पुत्र भरत जिन्होनें चक्र-रत्न प्राप्त किया था । उन्हें धर्म भावना उत्पन्न होने से दान की भावना उत्पन्न हुई और दान हेतु लोगों को आमंत्रण किया जो सात्विक और अहिंसक प्रकृति के लोग आत्मा स्वरूप को पाने के लिए तत्पर थे उन्हें यज्ञोपवीत देकर ब्राह्मण संज्ञा दी । इस प्रकार चार वर्ण व्यवहार में प्रचलित हुए । वह चार वर्ण आज भी विश्व में हैं किन्तु काल दोष के कारण उन वर्णों में अनेक भेद उत्पन्न हो गये । लोग छोटे-छोटे समुदायों में बंटते जा रहे हैं । शायद यह काल का ही प्रभाव है जो कि भरत चक्रवर्ती के स्वप्न में आया था कि छिद्र सहित चन्द्रमा है जिसका फल यह है कि पंचम काल में जिन शासन में अनेक भेद-प्रभेद होंगे और लोग टुकड़ों में बंट जाँएगे । भगवान महावीर कहते हैं वह वर्ण कहीं बाहर से नहीं बल्कि इंसान के अंदर में है । सर्वप्रथम इंसान का मस्तिष्क मन ब्राह्मण है। मन से जो शुभ भाव के द्वारा स्व-पर कल्याण का विचार किया जाता है वही भाव ब्राह्मण के हैं सिर शरीर का श्रेष्ठ अंग है। सिर के लिए पूज्यता प्राप्त है। जिस प्रकार ब्राह्मण पूज्य एवं श्रेष्ठ माने जाते है। एवं स्व पर कल्याण करने में रत रहकर परमात्मा का स्मरण ध्यान करते हैं ।

क्षत्रिय का अर्थ है रक्षा करने वाला जिस प्रकार छतरी जो इंसान की धूप एवं जलवृष्टि से रक्षा करती है उसी प्रकार क्षत्रिय प्राणी मात्र का रक्षक होता है। किन्तु रक्षा कौन कर सकता है? जिसके हृदय में दया, करुणा एवं प्राणी मात्र के प्रति प्रेम होता है जिसके मिलने पर लोग उसे सहसा गले लगा लेते हैं अत: उस इंसान का हृदय क्षत्रिय है।

वैश्य का अर्थ है विनिमय व्यापार करने वाला । अधिक से अधिक संग्रह वृत्ति वाला वैश्य होता है। .

उसी प्रकार इंसान जो षट्रस से युक्त भोजन करता है उस सभी भोजन का संग्रह पेट में होता है अत: पेट के लिए वैश्य की संज्ञा दी गई है। एवं उससे नीचे के अंग जो शुद्धाशुद्ध कार्य के होते हैं एवं पैर से इंसान इधर-उधर की दौड़-धूप करके समस्त सामग्री जुटाता है। सिर, हृदय, पेट आदि की पूर्ति हेतु हाथ, पैरों से कार्य कराता है अत: इन अंगों के अलावा शेष अंगों को शूद्र संज्ञा से जाना गया ।

प्यारे बन्धु! शरीर के यह अंग आपके जीवन की हकीकत को स्पष्ट कर रहे हैं । कहने का तात्पर्य है कि जो अपने जीवन में सिर अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने हेतु अपने जीवन को लगाते हैं वह ब्राह्मण हैं तथा जो प्राणीमात्र के लिए प्रेम बाँटने के लिए जीवन का उपयोग करते हैं, जीवों की रक्षा हेतु अपना जीवन समर्पित करते हैं वह जन्म से कोई भी हो किन्तु भगवान महावीर की दृष्टि में क्षत्रिय हैं तथा जो मात्र पेट भरने के लिए जी रहे हैं वह वैश्य हैं। जो दुनियाँ की भाग दौड़ करते हुए भोग और बासना एवं अपनी आजीविका हेतु दिन रात हाथ पटकते रहते वह शूद्र हैं। प्यारे भाई ! सभी अपनी पहिचान कर सकते हैं कि हम क्या हैं ? क्योंकि सर्वार्थसिद्धि

में आ. पूज्यपाद स्वामी ने मनुष्य के दो भेद बताए हैं । आर्य और मलेच्छ । आर्य-जिनका खान-पान रहन-सहन सात्विक एवं श्रेष्ठ होता है वह आर्य हैं तथा जिनका खान-पान, रहन-सहन तैजस एवं हिंसक और मादक होता है उन्हे मलेच्छ कहते हैं । इनके भी दो-दो भेद होते हैं। **प्रथम जाति आर्य** यानि आर्य जाति में जन्म लेने वाला, **दूसरा कर्म आर्य** । जो मलेच्छ होकर भी सद्कर्म करने वाला कर्म आर्य है। इसी प्रकार मलेच्छ भी दो प्रकार के होते है। मलेच्छ जाति में जन्म लेने वाले जन्म मलेच्छ तथा आर्य जाति में जन्म लेने वाला आर्य होकर भी यदि मलेच्छ कार्य करता हैं तो कर्म मलेच्छ कहा गया हैं **इसी प्रकार जो इंसान जिस कार्य के लिए जीता है जो कर्म करता हुआ जीता है वही होता है।**

तन को देखो किस तरह से मल रहा है आदमी ।
भूलकर निज आत्म को भी छल रहा है आदमी ॥
कितना मन विचलित हुआ है आज के इंसान का ।
आर्य सभ्यता छोड़ म्लेच्छ बनता जा रहा है आदमी ॥

चित् एक चित्त अनेक :-

भगवान महावीर ने कहा इंसान बहु चित्तवान है । उसकी आत्मा एक है किंतु चित्त अनेक हैं बहु चित्तवान है इसलिए शाम को चित्त में निश्चित कर लेता है कि कल मैं यह कार्य करूँगा और उस कार्य में छोटी सी भी उलझन आ जाती है तो वह तुरंत ही फिसल जाता है। और फिर वह कोई दूसरा कार्य करने का निर्णय करने लग जाता है। जैसे कोई इंसान क्रोध करने के बाद पश्चात्ताप करता है कि कल मैं क्रोध नहीं करूँगा । किन्तु सुबह होते ही पुनः क्रोध करता है और यह घटना एक दिन ही नहीं रोज-रोज इसी

प्रकार से हमेशा घटती रहती है रोज नई-नई भूल करता है और रोज पश्चात्ताप करता है। इसका कारण क्या है? जो चित् कार्य करता है और जो चित्त निर्णय करता है उनमें एक दूसरे की जानकारी भी नहीं रहती है। इंसान का चित्त खंडित है यही कारण है कि आज का इंसान हिंसक चित्त बना है। यदि अहिसंक चित्त हो जाए तो अखंड हो जाएगा और एक चित् होने से उसके द्वारा भिन्न-भिन्न स्वर नहीं निकल सकते और वह तभी संभव है जब उस चित्त को चित् से जोड़ दिया जाए।

हिंसक चित्त का अर्थ है जो कषाय करने के लिए उत्सुक हो रहा है जो लड़ने के लिए उतारू है जो चित्त लड़े बिना बैचेन है जो बिना किसी का घात किए आकुल हो रहा है जो किसी को कराहता देखकर खुश हो जाए, जिसका उद्देश्य ओरों को कष्ट पहुँचाना बन गया है वह चित्त अंतर की गहराई में दुःखी होगा। यह गहरा सिद्धांत है कि इंसान दूसरे को वही देता है जो उसके पास होता है आ. पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है :-

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः ।
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ॥

अर्थात् अज्ञानी जीव अज्ञानी की उपासना करता है और ज्ञानी जीव ज्ञानी की उपासना करता है जैसा कि सिद्धान्त है कि जिसके पास जो होता है वह वही तो देता है। जब किसी इंसान का चित्त ओरों को दुःख देने को आतुर होता है तो इसका अर्थ है कि उसके चित्त में भी दुख भरा है जो किसी पर उड़ेला जा रहा है औरों को शूल चुभाने से

पहले अगर वही शूल अपने हृदय में चुभा लिया जाए तो उसकी वेदना का आभास हो जाएगा । औरों के घर में अंधकार पहुँचाने के पहले अपने घर के दीपक को बुझाकर तो देखो, अपने घर को अंधकारमय करके देखों। **कैसा लगता है। अरे ! औरों के घर अन्धकार करने वालो सोचो! आपके साथ जलने वाले दीपक से औरों के घर में भी प्रकाश हो जाएगा।** जो हिंसक चित्त वाला है वह स्वयं अपनी आत्मा की हिंसा कर रहा है। अतः अमृतचंद्र स्वामी ने कहा है :-

रागादीण मणुप्पा अहिंस कत्तं ति देसियं समये ।
तेसिं च उत्प्पत्तिं हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठे ॥
स्वमेवात्मनात्मानं, हिन्स्त्यात्मा कषायवान ।
पूर्वं प्राणन्तराणां तु, जीवो पर न व बधाः ॥

जिसका चित्त हिंसक होगा उसके परिणाम निर्मल नहीं हो सकते। यह निश्चय है कि जीव का घात तो उसकी आयु के अनुसार ही होता है परंतु हिंसा का विचार करने वाला आत्मघाती हो चुका है। जीव की आयु शेष हो तो उसे कोई मार नहीं सकता परंतु हिंसक चित्त वाले इंसान ने मारने के भाव किए । अतः वह हिंसक हो चुका है। जब हिंसक चित्त हुआ तब कषायवान हुआ । कषायवान होना ही आत्मघात है।

जिन्दगी में प्यार का सरगम भी होना चाहिए ।
मन में अपना दूसरों का गम भी होना चाहिए ॥
क्रोध और पाप से मुरझा जाते हैं मन के चमन ।
क्षमा करके जी सकें वह दम भी होना चाहिए ॥

जिंदगी एक घड़ी

भगवान महावीर कहते हैं जिंदगी एक घड़ी है किंतु हम उस घड़ी की बात नहीं कर रहे है जो आप अपने हाथों में पहनते हैं वह घड़ी तो कृत्रिम (मानव द्वारा) बनाई हुई है, अचेतन है। हम चेतन और शाश्वत घड़ी की बात कर रहे हैं । घड़ी की भांति ही तेरे हृदय की धड़कन चल रही है । घड़ी ट्कि-ट्कि करती है किन्तु धड़कन धक-धक करती है भजन में भी कहा है :-

जीवन चलती हुई घड़ी कब रुक जाये रे ।
टिक-टिक ऽ ऽ हो-हो टिक टिक करती हुई ।
वह तुझे जगाए रे !

हमारी जिदंगी की घड़ी निरंतर घूम रही है। इस घड़ी में सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र के 3 काँटे न हो तो जिंदगी की घड़ी व्यर्थ है।

प्रथम घंटे के कांटे को गौर से देखने पर पता चलता है कि मिनिट का कांटा लंबा है और घंटे का कांटा छोटा है और गहरा होता है। मिनिट का कांटा तो ज्ञान का कांटा है और घंटे का कांटा चारित्र का कांटा है और सैकेण्ड का कांटा दर्शन का कांटा है। ज्ञान का कांटा बारह अंकों को पूरा पार करता है तब कहीं चारित्र का कांटा एक कदम चलता है आचरण पालन करना आसान नहीं है । आचरण छोटा भले हो यदि ठोस हो तो सर्व पूज्य होता है। जिसके जीवन में आचरण होता हो उसी के चरण पूज्य होते हैं। संतों के पास आचरण होता है इसलिए

आप उनके चरण पूजते हो, चरण प्रच्छालन करते हो उनकी सुंदरता को देखकर नहीं । संत चरणों के साथ आचरण का संबंध है संतों के चरण सदाचरण और सद् राह पर ही बढ़ते हैं । आप खाली चरण ही मत पकड़ते रहना कुछ आचरण भी पकड़ लेना तभी, आपको जिन्दगी की सार्थकता प्राप्त हो सकेगी । आचरण हीन इन्सान की जिन्दगी कैसी है इस सम्बन्ध में कहा है।

मुक्तक:

क्या ? जिंदगी की राह बे राह हो गई ।
क्या ? मेरी यह जिंदगी तबाह हो गई ॥
जिंदगी तो हर जीव को प्राप्त है धरती पर ।
आचरण से हीन जिंदगी गुनाह हो गई ॥

वह सम्यक् आचरण हमारे जीवन में भी प्रकट हो हम भी उसके अधिकारी बने इसी भाव दशा को लेकर ही संतों के चरणों की वदंना की जाती है।

आज के लोग चरण तो पकड़ रहे हैं किन्तु आचरण छोड़ रहे हैं वास्तविक सत्य तो यह है कि आज इन्सान को चरण नहीं आचरण पकड़ने की आवश्यकता है यदि आचरण पकड़ लिया तो आपके भी चरण पूज्य हो जावेंगे ।

आप संतों को सुनते हैं पर संतों की बात पर मनन नहीं करते, ग्रहण नहीं करते हैं । एक बार एक माँ ने बेटे को घड़ा दिया और कहा इसे नल के नीचे रख दे भर जाए तो वापिस ले आना । थोड़ी देर बाद

में बेटा घड़ा वापिस ले आया । माँ ने पूछा घड़ा भर गया । बेटा ने कहा नहीं । फिर माँ ने पूछा -क्यों नल नहीं आये क्या ? बेटे ने कहा नल तो आया था । फिर माँ ने पूछा- नल के नीचे नहीं रखा था । बेटे ने कहा- नल के नीचे भी रखा था । तब माँ के लिए बड़ा आश्चर्य हुआ, आप बताइये है न आश्चर्य की बात। फिर बेटे से पूछा- क्या घड़ा फूटा है, तो बेटे ने कहा -नहीं माँ, फिर माँ ने कहा- बेटा, यह बताइये घड़ा सीधा रखा था या उल्टा । तब बेटे ने कहा- माँ घड़ा तो उल्टा रखा था। वश यही भूल हुई कि घड़ा नहीं भर सका उसमें सारा सागर भी डाल (उड़ेल) दें तो भी घड़ा नहीं भर सकता है ।

प्यारे भाई ! वह घड़ा कोई नहीं आज की दुनियाँ के लोगों का दिमाग ही हैं । संत और विद्वान अपना उपदेश देते हुए पसीना-पसीना हो जाते हैं किन्तु आप है कि जरा भी नहीं पसीजते हैं। ऐसे पात्र बनो जो कि भर सके उल्टे घड़ा नहीं सीधे घड़ा बनो। किसी ने कहा है-आज के मनुष्य का दिमाग ऐसा घड़ा है कि भर ही नही पाता है। तुम ऐसे घड़ा हो कि भर ही न पाते हो यहाँ सुना और बाहर निकलते ही सारा भूल जाते हैं। इस बात को लेकर हमें एक घटना याद आती है।

घटना : एक नगर में राजा बड़ा वात्सल्यमयी था । राजा का प्रजा में वात्सल्य होना ही चाहिए क्योंकि राजा के लिए प्रजा पुत्रवत् होती है। पुत्र के प्रति पिता को जो प्रेम होता है वही प्रेम राजा का प्रजा के प्रति होना ही चाहिए। राजा ने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया हमारे राज्य में प्रजा को कोई कष्ट नहीं होना चाहिए, असुविधा नहीं

होनी चाहिए और कर्मचारियों ने सम्पूर्ण सुविधाएँ देने का प्रयत्न किया सारी प्रजा सुखी थी । एक दिन राजा ने मंत्री से पूछा-मंत्री प्रजा में कोई द:खी तो नही है, कोई असुविधा तो नहीं है ? मंत्री ने कहा-राजन् सारी प्रजा सुखी है सारी सुविधाएँ जुटा दी गयी हैं। किन्तु थोड़ी सी कमी अवश्य रह गई है। राजा ने पूछा क्या ? तब मंत्री ने कहा- महाराज अपने राज्य में अनेक स्थानों से व्यापारी लोग माल खरीद कर लाते हैं वह बिक गया तो ठीक बच गया तो उसे वापिस ले जाना पड़ता है, राजा ने कहा वश इतनी सी बात है तब राजा ने मंत्री से कहा-इसका भी इंतजाम होना चाहिए इसका क्या उपाय है?

मंत्री ने विचार करते हुए कहा महाराज यदि बाजार के चारों ओर बड़े- बड़े गोदाम तैयार कर दिये जावें तो लोगों का जो माल बचेगा उसे उसमें रख दिया जायेगा और उन्हें उसके बदले में पूँजी दे दी जाएगी । इससे सब ठीक हो जाएगा राजा ने आदेश दिया ऐसा ही होना चाहिए और बात की बात में गोदाम बनकर तैयार हो गये । सभी सुविधाएँ पाकर लोग प्रसन्न हुए । उसी नगर में एक मूर्तिकार मूर्तियाँ बेचने के लिए आया हुआ था।

उसके पास तीन प्रकार की मूर्तियाँ थीं जो सभी एक समान दिखाई दे रही थीं । किन्तु उसकी कीमत में बहुत बड़ा अन्तर था। पहले प्रकार की मूर्ति की कीमत मात्र 10 रु. दूसरे प्रकार की मूर्ति की कीमत 10 हजार रु. और तीसरे प्रकार की मूर्ति की कीमत 10 लाख रूपया । लोगों ने मूर्तियाँ देखी तो पर किसी ने भी खरीदी नहीं, एक

जैसी होने पर इतना बड़ा अन्तर क्यों ? वह मूर्तिकार शाम को गोदाम में मूर्तियाँ रखने के लिए पहुँचा। उसने मूर्तियाँ गोदाम में रखने के लिए कर्मचारी से आग्रह किया कर्मचारी ने कहा ठीक है आप रख सकते हैं। मूर्तिकार ने उसके बदले कीमत माँगी, तीनों प्रकार की मूर्तियों की विभिन्न प्रकार की कीमत सुनकर कर्मचारी अवाक् रह गया मूर्तियाँ एक समान हैं फिर इतना अधिक अन्तर क्यों ? यदि तुम 10 रु. के हिसाब से कीमत लेना चाहते हो तो ठीक वरना हम नही जानते । कर्मचारी ने सोचा कहीं कोई ठगने वाला तो नहीं आ गया । यद्यपि उस समय पर लोगों में इतनी ईमानदारी थी कि पर वस्तु को छूना भी लोग पाप मानते थे। धोखा देने को अपराध, लेकिन फिर भी कर्मचारी को शंका उत्पन्न हुई । मूर्तिकार ने कहा-मूर्तियाँ यदि नहीं रखोगे तो हम राजा के पास शिकायत करेंगे कर्मचारी घबराया कहीं ऐसा न हो राजा नौकरी से या राज्य से निकाल दे। कर्मचारी असमंजस में पड़ गया वह सोच नहीं पा रहा था कि क्या करें यहाँ वह कहावत सिद्ध हुई ।

'आगे कुँआ पीछे खाई' रखते है तो खतरा, नहीं रखते तो खतरा, कर्मचारी ने मूर्तिकार को राजा के पास जाने से पहले ही जाकर सारी घटना राजा को सुना दी । राजा भी सुनकर परेशान हुआ आखिर बात क्या है ? तब राजा ने मूर्तिकार को बुलाकर पूछा - भाई, तुम्हारी मूर्तियाँ एक जैसी दिख रही हैं फिर इतना अंतर क्यों?

मूर्तिकार ने कहा-ठीक है महाराज आप जानना ही चाहते हैं तो एक धागा मंगवाइये । हम प्रेक्टीकल करके अन्तर दिखाते है। मूर्तिकार

ने एक धागा लिया और सर्वप्रथम 10 रु. वाली मूर्ति का धागा एक कान में डाला तो कान के अन्दर गया और दूसरे कान से बाहर निकल गया, दूसरा धागा लिया और 10 हजार रु. वाली मूर्ति के कान में डाला तो उसके मुँह से बाहर निकल गया और तीसरा धागा लिया जो 10 लाख रु. वाली मूर्ति के कान में डाला तो देखा कि अन्दर घुसता ही चला गया।

प्यारे-प्यारे बन्धु ! वह मूर्तियाँ अपनी विशेषता के आधार पर अपनी कीमत बता रही हैं कि इतनी अधिक कीमत क्यों है ? उस मूर्तिकार के पास मूर्तियाँ हों अथवा नहीं हों किन्तु यहाँ वह सभी प्रकार की मूर्तियाँ हैं। जिस प्रकार दश रुपये वाली मूर्ति में मूर्तिकार ने एक कान से धागा डाला तो वह दूसरे कान से निकल गया उसी प्रकार इस सभा में कुछ लोगों ने जो कुछ भी सुना वह दूसरे कान से निकल गया उन्हे कुछ याद नहीं क्या कहा है महाराज ने दूसरी मूर्ति की विशेषता वाले सभा में बैठकर सुनते हैं और सभा से बाहर जाकर दूसरों को भी बताते हैं कि आज सभा में क्या सुनाया गया था। परन्तु तीसरी मूर्ति की विशेषता यह है कि कानों से सुनकर अपने हृदय में बिठाकर उसका चिंतन, मनन कर उसे वह व्यक्ति अपने चारित्र में उतारकर अपने इस मानव जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करते हैं। आप सभी में वह तीन प्रकार की मूर्तियाँ हैं, अपनी-अपनी कीमत आँक सकते हो।

प्यारे बन्धु ! उस मूर्तिकार के पास तो मात्र तीन प्रकार की मूर्तियाँ थीं । किन्तु यहाँ पर चार प्रकार की मूर्तियाँ नजर आती हैं। वह चौथे

प्रकार की मूर्ति कौन हो सकती है वह तो सम्भवत: नहीं है क्योंकि तीसरी सर्व श्रेष्ठ मूर्ति फिर चौथे प्रकार की मूर्ति क़ौन सी होगी और उसकी कीमत क्या होगी ? तो वह चौथे प्रकार की मूर्ति है जिसके कान में छेद ही नहीं हैं उसकी कीमत भी क्या होगी ? अर्थात् कुछ भी नहीं, क्योंकि इन्सान की कीमत तन की चमक से नहीं चेतन के ज्ञान से होती है तन के बारे में किसी शायर ने कहा है :-

'फिसलना नहीं कभी, ऊपर की सफाई पर ।
बर्क चाँदी का चढ़ा है, गोबर की मिठाई पर ॥'

प्यारे बन्धु ! कीमत तन की नहीं चेतन की होती है चेतन रहित तन को लोग एक दिन के लिए भी घर में रखने के लिए तैयार नहीं होते शीघ्र ही उसे मिट्‌टी में मिलाने के लिये ले भागते हैं। जलाने के लिए ले जाते हैं।

हम कहते हैं उस मुर्दा को जलाने की शीघ्रता नहीं करें वह आपके लिए बहुत बड़ा संदेश लेकर आया है बहुत बड़ी पाठशाला है वह मृत होकर भी संसार की दशा का दिग्दर्शन कराने वाला है। हम तो यहाँ तक कहते हैं कि अपने-आप घरों में, अपने अतिथि ग्रह में एक मुर्दा अवश्य रखें जब तक कोई दूसरे इन्सान का मरण न हो तब तक पहले मुर्दा को रखें वह आपके लिए हर पल सचेत करता रहेगा अनीति की ओर नहीं बढ़ने देगा और जीवन की घड़ियों का महत्व बताएगा जिससे आप एक-एक घड़ी एक-एक पल का सही उपयोग कर सकेंगे जीवन का मूल्यांकन कर सकेंगे।

एक बार लोगों के बीच अनेक वस्तुओं के मूल्य आँकने की बात चल रही थी तभी अचानक राजा के सामने उसका पुत्र आ गया। पुत्र को देखकर राजा खुश हो गया और उसने पूछ लिया अच्छा श्रेष्ठियो बताओ मेरे पुत्र की कीमत क्या है ? सभी आश्चर्य में पड़ जाते है पुत्र की कीमत क्या होगी? राजा ने आदेश दिया एक सप्ताह के अन्दर मेरे पुत्र की कीमत आँकलन कर बताईये अन्यथा आपके लिए दण्ड दिया जायेगा। एक वृद्ध पुरुष ने लोगों को चिंतामग्न देखकर कहा चिंता की कोई बात नहीं आप चलिए आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया जायेगा।

राज्य सभा में राजा के सामने वृद्ध ने कहा राजन्-पुत्र को मेरे पास बुलाया जाय। पुत्र पास में आ गया इधर-उधर देखने के बाद बेटे के मस्तिष्क पर अपनी दो उगलियाँ रख कर कहा-इस दो अंगुल स्थान को छोड़कर राजकुमार की कीमत एक मिट्टी के पुतले के बराबर है। सभी आश्चर्य करने लगे, है न आश्चर्य की बात। कहने का मतलब है यदि बालक के पास मस्तिष्क में बुद्धि है, ज्ञान है और सौभाग्य यदि है तो उसका मूल्य (कीमत) है और बुद्धि, ज्ञान, सौभाग्य नहीं तो मिट्टी के पुतले के समान है।

प्यारे भाई ! जिसके अन्दर धर्म कर्म की ग्रहण क्षमता नहीं उसके कान में छेद नहीं है। यह चौथे प्रकार की मूर्ति है अर्थात् जो संत और भगवंत की वाणी सुनकर भी धर्मस्थल पर नहीं पहुँच पा रहे उन्हें क्या कहा जाएगा। क्या उनके कान में छेद हैं? यदि कान में छेद होते तो दौड़े चले आते और धर्म श्रवण कर अपना कल्याण करते।

इन्सान के जीवन में घड़ी और छड़ी बहुत उपयोगी है। घड़ी हाथ की शोभा है और छड़ी दिमाग की शोभा है । जब तक इन्सान के सामने छड़ी का भय रहता है तब तक इन्सान अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहता है, विद्यार्थी अपने विषय को तैयार करता है जिससे दिमाग की शोभा बढ़ती है और घड़ी कलाई में बंधी हो तो इन्सान के लिए सचेत करती है। रे इन्सान ! जिस प्रकार घड़ी का कांटा, आगे बढ़ रहा है। उसी प्रकार तेरी उम्र भी आगे बढ़ रही है। जिन्दगी की वह श्रेष्ठ घड़ी (वक्त) कब आयेगी जब तू परमात्मा के चरणों में समर्पित होगा। कहा भी है-

पुरुष की अपेक्षा स्त्री का महत्व बड़ा है ।
पाँच सौ की घड़ी और पाँच रुपये का घड़ा है ॥

आयुर्वायुवच्यचंचलं :- आयु वायु के समान चंचल है, घड़ी तुम्हें प्रति क्षण जगा रही है कि हे ! इन्सान तू सचेत हो जा वरना जैसे घड़ी की बैटरी समाप्त होते ही वह घड़ी नहीं रह जाती। खाली डिब्बी रह जाती है। उसी प्रकार तेरी आयु की बैटरी पूर्ण होते ही तेरी जिन्दगी की इति हो जायेगी । बैटरी चुकते घड़ी की कीमत नहीं, श्वांस चूकते इन्सान की कीमत नहीं होती है।

हँस के दुनिया में मरा कोई, कोई रोके मरा ।
जिंदगी पाई उसने जो कुछ होके मरा ॥

कुछ पाना है तो कुछ खोना पड़ेगा

राह में पड़े फूल को ऊपर उठाने के पूर्व फूल में कुछ धूल के कण तो अवश्य हाथ में आते हैं लेकिन सुकुमार सुकोमल पुष्प के जीवन की रक्षा हो जाती है तथा पुष्प हाथ में आते ही सुखद स्पर्श होता है और हाथ सुगन्धित होकर औरों का मन मोह लेते हैं। अग्नि के जलने के पूर्व धुआँ निकलता है लेकिन इंसान का ध्येय मात्र धुआँ उठाना ही नहीं होता बल्कि अग्नि से उष्णता, प्रकाश पाना उसका लक्ष्य होता। आप घृत चाहते हैं तो दही का मंथन करना पड़ता है। परोपकारी तो सेवा, दया, करुणा आदि अनेक गुणों से युक्त होता है और यह करने के लिए पहले झुकना तो पड़ता ही है। कहा भी है :-

झुकता वही है जिसमें कुछ जान है ।
अक्कड़पन तो खास मुर्दे की पहिचान है ॥

जो झुकता है वही गुणवान गुणों को पाकर विनम्र हो जाता है और विनम्र होकर सद्‌गुणों से भर जाता है। जो अकड़ता है, वह ठोकरें खाने के बाद भी कुछ प्राप्त नहीं कर पाता है, टूट जाता है। प्यारे भाई ! जल जब वाष्प बनकर आकाश में उड़ता है तब किसी की प्यास नहीं बुझा पाता किन्तु वही जल जब ऊँचाई छोड़कर जमीं में समा जाता है तो लोगों की प्यास बुझाता है। जल की श्रेष्ठता तो परोपकार में होती है। किसी सुभाषितकार कवि ने कहा है :-

परोपकाराय बहन्ति नद्या, परोपकाराय दुहन्ति गावा ।
परोपकाराय फलन्ति वृक्षः, परोपकाराय तपोधनः ॥

जिस प्रकार नदी परोपकार की भावना से बहकर लोगों की प्यास बुझाती है। उसी प्रकार गाय परोपकार के लिए दूध देती है। वृक्ष परोपकार के लिए फल देते हैं। उसी प्रकार साधु स्व पर का कल्याण करते हैं किन्तु दिगम्बर साधु इससे हटकर स्व-पर कल्याण का उपदेश देकर मार्ग प्रशस्त करते हैं।

परोपकार करने वाला पहले स्वयं सच्चा इंसान बनकर दिखाता है फिर परोपकार करने के लिए आगे आता है । एक बार की घटना है।

घटना : अकबर और वीरबल की सभा सारे देश में प्रसिद्ध थी। एक बार अकबर ने वीरबल से कहा - वीरबल यदि तेरी दाड़ी में आग लगे और मेरी दाड़ी में आग लगे तो तुम पहले किसकी दाड़ी की आग बुझाओगे ?

वीरबल ने बेझिझक होते हुए कहा वाह हुजूर ! स्पष्ट है पहले मैं अपनी दाड़ी की आग बुझाऊगाँ । अकबर ने कुछ क्रोधित होते हुए कहा वीरबल ! हमको तुमसे यह उम्मीद नहीं थी कि तुम इतने नमक हराम होगे । मेरे राज्य में रहते हो मैंने तुम्हें सबसे अधिक विश्वास पात्र मानकर मंत्री जैसा पद दिया । फिर भी इस वक्त आने पर तुमने अपनी पहिचान बता दी अनेक बातें करने के बाद अकबर ने कहा - अच्छा वीरबल बताओ तुमने ऐसा क्यों कहा ?

तब वीरबल ने कहा – जहाँपनाह सीधी सी बात है यदि मैं अपनी दाड़ी की आग बुझा सका तो मेरा जीवन सम्भव है और फिर मैं आपकी भी रक्षा कर सकूँगा और यदि मेरा ही जीवन समाप्त हो गया तो मैं क्या आपको बचा सकूँगा ?

हुजूर दो व्यक्ति गहरी नदी में हैं एक व्यक्ति जो स्वयं डूब रहा है वह क्या दूसरे को बचा सकता है ? अर्थात् नहीं बचा सकता । उसी प्रकार जो स्वयं इन्सान होगा वही औरों को इन्सानियत की राह पर चला सकेगा सही मार्ग दिखा सकेगा ।

भगवान महावीर स्वयं पहले मोक्ष की राह पर चले फिर उन्होंने विश्व के लिए मोक्ष की राह पर चलने का संदेश दिया कि भाई सत्य, अहिंसा की राह पर चलने से ही आत्मिक शांति की प्राप्ति होती है । किसी को अभय देने से ही अभय की प्राप्ति होती है और भय देने से भय प्राप्त होता है । भय और हिंसा इन्सान के लिए रोग हैं । यह पशु के लिए तो ग्राह्य हो भी सकती है पर इन्सान के लिए नहीं । इन्सान भय और हिंसा के साथ पैदा नहीं होता । हिंसा इंसान के लिए रोग है । इंसान के लिए अनिवार्य है इन्सानियत, जिस दिन इंसान, इंसान बनता है उसी समय से अहिंसा और अभय का जन्म हो जाता है क्योंकि इन्सानियत का फूल हिंसा और भय के बीच खिल नहीं सकता वह प्रेम और अभय के बीच ही संभव है ।

आज इंसान 'विशद' इंसान नहीं रह गया ।
शायद उसे इंसानियत का ज्ञान नहीं रह गया ॥
आज इंसान तन से इंसान हो भी सकता है ।
पर उसे इंसानियत का ध्यान नहीं रह गया है॥

अत: सिद्ध है कि हिंसा रोग है और अहिंसा अभय, स्वास्थ्य हिंसा और भय से बड़ा विश्व में कोई रोग नहीं है जितनी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं मन के द्वारा उत्पन्न होती हैं।

जिन्दगी में सुख शांति और आनन्द के लिए स्वस्थ्य चित्त सद्धर्म की नितान्त आवश्यकता है। स्वस्थ का अर्थ है स्वयं में स्थित होना । स्वयं में खो जाना । भगवान महावीर ने कहा - भगवान बाहर कहीं नहीं है सुख शान्ति बाहर नहीं अन्दर में है। जैसे ही अन्दर में जाते हैं शिखर सी ऊँचाई प्राप्त होती है। अन्तर में महासागर लहरा रहा है अन्तर में गौरी शंकर के ऊँचे-ऊँचे शिखर हैं किन्तु कोई बाहर उतरे तो अंतत: गहराई में चला जाता है । दुःख के सागर में, दलदल में फँस जाता है।

❊❊❊

आज इन्सान तो बढ़ रहे, पर इन्सानियत घट रही है।
धर्म के नाम पर, समाज टुकड़ों में बट रही है॥
इन्सान इन्सानियत की जिन्दगी, जीता भूलता जा रहा है।
लोग जिन्दगी जीते नहीं हैं, बल्कि जिन्दगी कर रही है॥

जहाँ घोर अंधकार छाया है

जीवन ऊर्जा जब हिंसा और पाप रूप में बहती है तो अधोगमन होता है और जब अहिंसा धर्म रूप में बहती है तो ऊर्ध्वगमन होता है। जीवन की ऊर्जा तो वही है जब बाहर जाती तो दुख लाती है किन्तु जब अन्दर जाती तो सुख शान्ति लाती है।

किसी भी क्षण, जब आपके हृदय में आनन्द की वर्षा हो रही होगी तब आपको यह महसूस होगा कि आप स्वयं में हैं जब दुःखी हुए तो पाया होगा कि आप स्वयं से बाहर हैं क्योंकि दुःख हमेशा बाहर से बँधा होता है।

कभी -कभी कोई ऐसे सुख जो दूसरों से मिलते हुए नजर आते हैं पर मिलते नहीं, यह भ्रम है औरों से सुख मिलेगा किन्तु मिलता दुःख ही है जब आँख खुलती है तब पता चलता है कि खोजा था सुख पाया है दुःख।

दुःख हमें सुख जैसा रूप दिखाकर आकर्षित करता, भ्रम में डालकर पास बुलाता है। धोखा देता है जैसे - राम स्वयं मृग के पीछे चले गये थे जब कि वे जानते थे कि स्वर्ण मृग कहीं होते ही नहीं। कम से कम राम जैसे ज्ञानी पुरुष को तो जानना ही चाहिए था। लेकिन कहा है **'विनाश काले विपरीत बुद्धि'** अर्थात् जब कोई होनहार आती है तो बुद्धि को कुन्द (शून्य) कर देती है। कथा अर्थ बहुत पूर्ण

है हम सभी स्वर्ण मृग के पीछे चले जाते हैं। सब जानते हैं कि स्वर्ण मृग नहीं होते फिर भी पीछे चले जाते हैं। राम चले गये स्वर्ण मृग को खोजने को अगर किसी पागल से कहा भी जाए तो वह <u>पागल भी जाने को राजी नहीं होगा ?</u> पर सोने का हिरण होगा कैसा उसे देखने राम भी चले जाते हैं । हमारे भीतर का राम भी चला जाता है आखिर में हम सब जो कुछ पाना चाहते है। वह कुछ भी मिलता नहीं क्योंकि स्वर्ण मृग के पीछे जाकर कुछ मिल नहीं सकता है लौकिक सुख स्वर्ण मृग हैं जो दूसरे से मिलता हुआ मालूम पड़े तो समझना कि राम अब स्वर्ण मृग को खोजने-चले गए इसलिए अब सीता की चोरी होकर रहेगी और आप जब दूसरे के पीछे सूखे खोजते चले जाते है तो आपके (अंतर की) भीतर की जो अन्तरात्मा है तो कहिए उसे 'सीता' उसकी चोरी हो ही जाती है हम सभी हो जाते है पतित फिर लम्बा युद्ध है, फिर रावण से संघर्ष है, फिर हत्यायें हैं एक स्वर्ण मृग के पीछे जाने वाले राम की उपद्रव और हिंसा की दुनियाँ शुरू (मृग) एक स्वर्ण मृग से यात्रा शुरू हुई तब तक वह चली मेरी दृष्टि में एक यह प्रतीक कथा है। शिक्षाप्रद है।

❋❋❋

जो चमन हमेशा खाक में ही, मिल जाया करते हैं।
जहाँ कभी भी बागवां 'नहीं' जाया करते हैं॥
बन यौवन पर गरुर करने वाले इन्सान सम्हल जा।
अन्त में इन्सान भी मिट्टी में मिल जाया करते हैं॥

सुखी जीवन का राज

इंसान के जीवन में दो सबसे बड़ी कमजोरियाँ हैं जिसके कारण इन्सान का सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है। इन्सान दुःख और पीड़ा से छटपटा रहा है । वह इंसान की कमजोरी है क्रोध और जिद् । महिलाएँ जिद् करना छोड़ दें तो इंसान का जीवन आज और अभी स्वर्ग बन जाएगा । जिद् एक ऐसी दीवार है यदि पति पत्नि के बीच खड़ी हो गई तो तोड़ना मुश्किल हो जाएगा । वैसे तो चीन की दीवार प्रसिद्ध है उसे तैयार करने के लिए कई वर्ष लगे होगें । परन्तु जिद् की दीवार को खड़ा करने के लिए समय नहीं लगता । यह दीवार तो पलक झपकते ही तैयार हो जाती है और सारे विश्व में यह दीवारें घर-घर में देखी जाती हैं। यदि महिलाएँ जिद् करना छोड़ दें, तो शायद पुरुषों को भी क्रोध की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और पुरुष भी अपने आप को सम्भाल कर रखें । अनायास ही क्रोध न करें तो परिवार की अनेकों समस्याएँ यूँ ही सुलझ जाएँगी ।

प्यारे बन्धु ! लोग स्वर्ग नरक की बात करते हैं वह स्वर्ग नरक किसी के हाथ नहीं आपके खुद के हाथ है यहीं पर स्वर्ग और नरक देखा जाता है जहाँ क्षमा, करुणा, दया, समता, सन्तोष है, वहाँ से स्वर्ग की यात्रा प्रारम्भ होती है और जहाँ क्रोध, हिंसा, छल, लालच, असंतोष है वहाँ से नरक की यात्रा प्रारम्भ होती है । स्वर्ग की बात को लेकर एक हँसी की बात याद आई:-

घटना : एक बार एक युवक की शादी हुई । वह युवक जब अपने मित्र से मिला उससे उसने कहा -'घर में पत्नि आई तो घर स्वर्ग हो गया और मैं स्वर्गवासी हो गया ।' यह कथन दो अर्थों को लेकर चल रहा है, घर स्वर्ग होता तो बताइये स्वर्ग में रहने वाला क्या कहलाएगा ? स्वर्ग का वासी ही तो कहा जाएगा और दूसरा यह कि जब तक पत्नि नहीं आई थी तब तक घर का स्वामित्व एवं अस्तित्व सब कुछ उसका था किन्तु पत्नि के आने पर वह अपना अस्तित्व खो देता है इसलिए शायद स्त्री को घरवाली कहा जाता है क्योंकि विवाह हो जाने पर घर पर उसका पत्नि का अधिकार हो जाता । यह कहीं नहीं सुना कि फलाँ व्यक्ति उसका घर वाला है । घर का सारा कार्य स्त्री के द्वारा ही सम्पादित होता है यद्यपि पति और पत्नि दोनों बराबर के हकदार होते हैं इसलिए स्त्री को अर्धांगिनी कहा जाता है। यदि पुरुष स्त्री को अपना अंग माने और स्त्री पुरुष को अपना अंग माने तो कोई समस्या नहीं होगी ।

इंसान के दो हाथ हैं दोनो अंग हैं यदि दायें हाथ में चोट लगती है तो पूरे शरीर में कष्ट होता है बांये हाथ में कष्ट हो तो सारा शरीर पीड़ित होता है । उसी प्रकार यदि पति पत्नि दोनों एक दूसरे के लिए अपना अंग मान लें तो यह नौवत ही नहीं आयेगी । दोनों हाथों की पकड़ बहुत मजबूत होती है। यह बात अवश्य ही विचार करने योग्य है। जब एक पैर आगे चलता है तो दूसरा पैर उसका अनुगामी बनकर कार्य करता है यदि एक पैर आगे बढ़े और दूसरा पीछे की ओर खिंचता रहे तो क्या यात्री यात्रा कर पायेगा? अर्थात् नहीं । गृहस्थ जीवन की

यात्रा में दोनों के लिए एक दूसरे का अनुगामी सहयोगी बनकर चलना होगा तभी यात्रा सफल होगी।

जिस प्रकार कभी दांया पैर आगे होता है, तो बांया पैर उसका साथ देता है और बांया पैर आगे होता तो दांया पैर उसका सहयोगी बनकर आगे बढ़ता है उसी प्रकार पुरुष अगर कोई कार्य करे तो स्त्री को सहयोग करना चाहिए और स्त्री उपयुक्त कार्य करे तो पुरुष को सहयोगी बनकर कार्य करना चाहिए। यही शांति और सामंजस्य का उपयुक्त तरीका है। यदि पति क्रुद्ध हो तो पत्नि शांत हो जाए शीतल जल बन जाए और पत्नि क्रुद्ध हो तो पति सरोवर बन जाए। किन्तु पत्नि आग और पति अंगारा बन जाए तो होली जलने से कोई नहीं रोक सकता। भूकम्प आ जाएगा। और यह भूकम्प जीवन की खुशियाँ और खुशबुओं की हत्या कर देगा, खत्म कर देगा। जब भी कोई बखेड़ा खड़ा होता है तो बातों से होता है। शब्दों से होता है। शब्दों के भाव और नजरिया को न समझने से होता है कोई भी शब्द गीत नहीं होता और न ही कोई शब्द गाली होता है। मात्र समझने का नजरिया गीत और गाली होता है। अर्थ लगाना हमारे हाथ है :-

हरे भरे वृक्षों की डालियाँ बहुत अच्छी लगतीं हैं।
खुशी के अवसर पर तालियाँ बहुत अच्छी लगती हैं।
हमेशा खुश रहना सीखो प्यारे भाई अपनी जिंदगी में।
कभी-कभी सुनने में गालियाँ बहुत अच्छी लगती हैं।

घटना :- एक बार एक सेठजी बड़े ही श्रद्धालु धर्मात्मा सद्भक्त थे किन्तु उनकी पत्नि शांति बाई नाम से विपरीत थी। नाम तो

शान्ति बाई था किन्तु थी पूरी क्रान्ति बाई। धर्म से विमुख थी। बाह्य की चकाचौंध में रुचि लेने वाली पड़ौसियों को देखकर हमेशा दुःखी रहती। पति से शिकायत करती, देखो फलाँ व्यक्ति कल अपनी बीबी को साथ लेके सिनेमा गया था। कभी शिमला, मंसूरी की बात करती तो कभी खजुराहों एवं एलोरा गुफाओं की सैर करने या पिकनिक पर जाने की बात करती। किन्तु सेठ अनसुनी कर सुबह से उठता, मंदिर जाता पूजा करता, पश्चात् भोजन कर दुकान चला जाता। शाम को दुकान से आया हाथ पैर धोकर शाम का भोजन कर मंदिर चला जाता। सामायिक जाप स्वाध्याय कर विश्राम करने लगता।

"सादा जीवन उच्च विचार" की धारणा वाला था।

एक बार नगर में मुनिराज का आगमन हुआ। सेठ ने विचार किया आज मुनिराज के साथ मंदिर में ही विश्राम करना चाहिए। उसने पत्नि से कहा - आज मैं मंदिर में ही विश्राम करुँगा। मेरा इंतजार मत करना। आज मुनिराज आये हुए हैं सुनते ही शांति बाई का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच गया और उसने जोर से चिल्लाते हुए कहा-हाँ, हाँ जाओ, घर पर थोड़े ही कोई तुम्हारा है। यहाँ पर है ही कौन ? यहाँ आकर क्या करोगे। मुनि आये हैं तो दीक्षा ले लो चले जाओ उन्हीं के साथ, कहीं घूमने घुमाने की बात तो रही अब मंदिर में ही रहेंगे स्वामीजी। सेठ ने अनेक खरी-खोटी सुनने पर भी कोई उत्तर नहीं दिया तो शांति बाई क्रोधित होकर बोली उत्तर भी नहीं देता जानवर कहीं का, और वह पैर पटकते हुए घर के अन्दर चली गई और सेठ धर्मदास मंदिर की ओर चले गए।

कुछ समय पश्चात् शांतिबाई की सहेली आकर अपने पति के द्वारा किए गए मार पीट और गाली गलौच का रोना रोने लगी । तब शान्ति बाई को अपने पति की सज्जनता और सरलता का एहसास हुआ । कहा भी है-हंस की विशेषता उल्लू के दिखने पर ही पता चलती है। वह मन ही मन पश्चाताप करने लगी । सुबह पति के घर आते ही पत्नि ने सेठ से बैठकर अच्छी तरह से बातें करना प्रारम्भ कर दिया और पूछा-कल आपसे भला बुरा कह दिया था । तो आपको बुरा लगा होगा?

सेठ धर्मचन्द्र जी- आश्चर्य से ! कहते हैं बुरा लगा होगा ।

शान्तिबाई - हाँ ।

सेठ धर्मचन्द जी - किस बात का बुरा लगा होगा ?

शान्ति बाई - मैंने कल आपके लिए इतनी बड़ी गाली दे दी थी। आप हैं कि अन्जान बन रहे हैं ।

सेठ धर्मचन्द्र जी - कौन सी गाली दी गई थी ?

शान्ति बाई - मैंने आपको जानवर नहीं कह दिया था ? आप मुझे क्षमा कर दीजिए । मैं आपके सामने बहुत शर्मिन्दा हूँ कहकर रोने लगी ।

सेठ धर्मचन्द्र - नहीं तुमने कोई गाली नहीं दी, रही बात जानवर की तो यह कोई गाली नहीं तुमने ठीक ही कहा है हम वाकई जानवर हैं।

शांति बाई - आप और जानवर मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा।

सेठ धर्मचन्द्र -हाँ, जिस दिन से तुम्हारे साथ विवाह हुआ था उसी दिन से जानवर हो गया था ।

शान्ति बाई - आप भी मजाक करते हो ? कौन सी पहेली बूझ रहे हैं ? आप सुस्पष्ट समझाइये ।

सेठ धर्मचन्द्र - तुम समझती नहीं हो तो सुनो -तुम मेरी जान हो।

शान्ति बाई - हाँ, यह तो ठीक है।

सेठ धर्मचन्द्र - और में तुम्हारा वर हूँ कि नहीं ?

शान्ति बाई - हाँ, यह तो सत्य है आप मेरे वर हैं, स्वामी हैं ।

सेठ धर्मचन्द्र - अब स्पष्ट हो गया न 'तू जान मैं वर' दोनों मिलाने पर जानवर हुए कि नहीं ।

यह सुनकर शान्ति बाई पानी -पानी हो जाती है । अपने जानवर (पति) के सामने हाथ जोड़कर क्षमा मांगती है । आप धन्य हैं और आपकी समता, क्षमता धन्य है आपने मेरे लिए जिंदगी दे दी अब मैं क्रोध नहीं करूँगी ।

यहाँ क्रोध की बात चल रही है लोग कहते हैं क्रोध आ गया । अरे! भाई, क्रोध कहाँ से आ गया वह तो अन्दर में ही बैठा है कहीं से आता नहीं । अभी सो रहा है किन्तु थोड़ा सा निमित्त मिला कि क्रोध जाग्रत हो जाता है क्रोध के निमित्त तीन प्रकार से मिलते है।

(1) कभी कोई बात कहे और सामने वाला नहीं मानता है तो क्रोध आ जाता है । किन्तु उस समय पर विचार किया जाए कि आखिर प्रत्येक जीव स्वतंत्र है उसे भी सोचने विचारने का अधिकार है । हो सकता है उसकी दृष्टि में वह बात गलत हो यदि यह विचार कर लिया जाए तो क्रोध आयेगा ही नहीं यदि आ भी जाए तो क्षण मात्र में जाता रहेगा ।

(2) दूसरा हेतु यह कि कोई क्षति होने पर टूट फूट होने पर क्रोध आ जाता है यदि उस समय विचार किया जाए कि जो हानि होनी थी वह तो हो चुकी है। अब व्यर्थ क्रोध करने से क्या लाभ है? व्यर्थ क्रोध करने से और अधिक हानि हो सकती ।

अगर त्याग करते हो, करो क्रोध का तुम ।
तो दुनियाँ तुम्हें, अपना मान लेगी ॥
त्याग दो क्रोध को तुम, मन वचन और तन से ।
तो दुनियाँ तुम्हें, ईश्वर मान लेगी ॥

किसी बच्चे से हानि हो गई तो पहले वह स्वयं भयभीत हो जाता साथ ही क्रोध करने से और अधिक भय के कारण भाग जाए या कोई उल्टा कार्य करे तो उसका दुष्परिणाम दुःखद हो सकता है । जहाँ तक हानि की बात है तो क्षति तो सभी से हो सकती है । किन्तु स्वयं के द्वारा होने वाली क्षति में लोग शांत हो जाते हैं और दूसरों के द्वारा होने वाली क्षति में उत्तेजित हो जाते हैं।

एक बार पिता पुत्र अपने बैडरूम में बैठकर बात कर रहे थे तभी किचिन में कुछ गिरकर फूटने की आवाज आई । पिता ने पुत्र से कहा-

देखो बेटे शायद गुड़िया ने कुछ पटक दिया है। पप्पू ने कहा - नहीं पापा गुड़िया ने नहीं गिराया यह तो मम्मी के हाथ से गिरा है। पिता पप्पू से कहते हैं तुम तो यही पर बैठे -बैठे सारी कहानी कह देते हो । तूने कैसे जान लिया कि मम्मी ने गिराया, तेरे लिए अवधिज्ञान तो नहीं हुआ पप्पू ने कहा अवधि ज्ञान तो नहीं हुआ किन्तु बात सत्य है। पिता ने पूँछा-कैसे सत्य है? तब पप्पू ने कहा- यदि गुड़िया से गिरा होता तो मम्मी अब तक सारा घर सिर पर उठा लेती और हंगामा खड़ा हो गया होता, किन्तु वस्तु गिरने पर भी कोई आवाज नहीं आई बात बिल्कुल सिद्ध है कि मम्मी के हाथ से वस्तु गिरी है।

(3) तीसरा हेतु है यदि कोई अपशब्द या गालियाँ देने लगे तो क्रोध आता है। उस समय पर यदि हम विचार करने लगे कि सामने वाला कुछ दे ही रहा है, ले थोड़े ही रहा है और यदि यह विचार करें कि सामने वाले के पास जो है वही तो देगा । शायद उसके पास गालियाँ ही हैं अच्छी चीज है ही नहीं तो गालियाँ दे रहा है। यदि गीत होते तो गीत सुनाकर हृदय तृप्त कर देता।

कटनी विद्यालय की घटना :- एक विद्यार्थी ने दूसरे विद्यार्थी के लिए गालियाँ दी । बालक ने अध्यापक से शिकायत की यह पप्पू हमको गाली दे रहा है। अध्यापक ने कहा आपको गालियाँ दी तो बताइये कहाँ हैं वह गालियाँ जेब में रखी हैं क्या ? लाओ बताओं कौन सी गालियाँ दी हैं हमको दे दो। तब बालक ने कहा-पं.जी हाथ से नहीं मुँह से दी हैं तब गुरूजी ने कहा-अच्छा हमारा यह पेन हम आपको देते

हैं आप नहीं लेते तो किसके पास रहेगा । बालक ने कहा - गुरूजी आपके पास । तब गुरू जी ने कहा-आपको पप्पू ने गालियाँ दी आप नहीं लेते तो किसके पास रहती। बालक ने कहा - पप्पू के पास । फिर तुम क्यों परेशान हो। बात सत्य है कि कोई देता है तो हम तुरन्त लेने को तैयार बैठे रहते हैं। अगर नहीं लें तो कोई दिक्कत नहीं हो सकती और फिर बालक ने कहा - इसने गंदी-गंदी गालियाँ दी थी और मुख से दी थी। तब गुरू जी ने कहा- उसका मुख गंदा है अतः उससे गंदी-गंदी गालियाँ निकल रही हैं क्योंकि गंदे स्थान से ही गंदगी निकलती है एवं अच्छे स्थान से अच्छी वस्तु निकलती है। जैसे कि आप इत्र के घड़े का मुँह खोलेंगे तो सुगंध निकलेगी और मूत्र के घड़े का मुख खोलेंगे तो दुर्गन्ध निकलेगी । मुख दोनों घड़ों का खोला जा रहा है । किन्तु दोनों घड़ों में कितना अन्तर है। इत्यादि प्रकार के चिंतन से तथा जो सम्यक् दृष्टि है वह विचार करता है मेरी आत्मा तो सभी विकारों से तन मन से भिन्न है उसे तो न कोई गाली दे सकता है और न ही कोई गाली ले सकता है फिर हम किस पर क्रोध करें वह शांत होकर चेतना स्वरूप में लीन रहता है। एक सत्य घटना है :-

घटना :- एक बार हम लोगों का विहार चल रहा था। एक गाँव के बच्चे चिल्लाने लगे ओ हो! नंगा जा रहा, लुच्चा, लंफगा कुत्ता इत्यादि अपशब्द बोलने लगे, साथ चलने वाले लोगों ने सुना तो बच्चों का पीछा करना प्रारम्भ कर दिया और जोर-जोर से डाँटते हुए कहा ये इस प्रकार से हमारे गुरु जी के लिए बोला तो हम ठीक कर देगें

इत्यादि। हमने कहा अरे ! भाई क्या हो गया। साथ चलने वाले लड़कों ने कहा-महाराज श्री आपके लिए अपशब्द बोल रहे हैं तब मैंने पूँछा भाई! क्या कह रहे हैं? वह बोले नंगा-नंगा चिल्ला रहे तो मैंने कहा ठीक है जो हैं वही तो बोल रहे इसमें क्या दिक्कत है। और क्या कह रहे लुच्चा कह रहे। मैंने कहा-लुच्चा कह रहे। यह भी ठीक कह रहे हम तो हर चार माह में लोंच करते हैं तो लुच्चा हुए। और क्या कह रहे। लफगा कह रहे, इसका मतलब है अंगों को लफाकर झुकाकर चले तो हम लोग हमेशा नीचे सिर करके देखकर चलते हैं तो क्या गलत कहा? और क्या तरा कहा? कुत्ता कहते। कुत्ता का अर्थ है 'कु' यानि कुकर्म 'ता' तापने वाले, नष्ट करने वाले, तो हम काम वही कर रहे हैं अब क्या गलत कहा और नालायक कहता तो भी ठीक है। हम बताइये किसके लायक हैं आत्म साधना करके अपने में लीन रहते किसी के लायक भी नहीं हैं?

इससे अधिक और क्या कह सकता है। पागल कहेगा, तो पागल का अर्थ सभी जानते हैं। पापों को गलाने वाले इत्यादि । अर्थ ग्रहण करें तो समस्या नहीं होती । शब्द एक है उसका उपयोग लगाने की बात है। यदि उपयोग सही किया तो अनेक समस्याएँ हल हो जाती हैं और अनेक आने वाली विपत्तियाँ टल जाती हैं।

सहानुभूति एक धोखा

यद्यपि सहानुभूति बहुत श्रेष्ठ और उपयोगी आयाम है इसका अर्थ है कोई व्यक्ति दु:खी है उसके दु:ख में दु:ख प्रकट करते हुए दु:खी होना। सहानुभूति का अर्थ है सह + अनुभूति अर्थात् दूसरे के साथ स्वयं अनुभव करना किन्तु सही रूप में सहानुभूति नहीं करवाते।

यदि किसी के कारखाने में आग लग जाए तो दु:ख प्रकट करने वाले सैकड़ों लोग जमा हो जाते हैं किन्तु एक कारखाने के साथ दूसरा कारखाना खुल जाए तो उसमें अपने कहलाने वाले भी सुख प्रकट नहीं कर पाते, सुख का अनुभव नहीं कर पाते इसका मतलब है कि सहानुभूति धोखा है।

सहानुभूति तभी सच्ची मानी जा सकती है। जब दूसरों के दु:ख में दु:ख और सुख में सुख अनुभव हो किन्तु ऐसा नहीं होता है। यदि हम औरों के सुख में सुखी हो जाएँ तो हमारा दु:ख में दु:खी होना भी सत्य होगा।

तन तो उजला दिख रहा, काले मगर विचार।
है विचित्र कितना 'विशद' यह सारा संसार ॥

सहानुभूति मानसिक घटना है मन में कभी एकता नहीं मिलती है। विश्व में जितने इंसान हैं, उनके उतने मन हैं, उससे कई गुने मानसिक विचार हैं। तन भी अलग-अलग है, मन भी अलग-अलग है

यदि समानता है तो चेतन की गहराईयों में आत्मा के सरोवर में सभी एक हैं । जैसे - एक घड़ा को पानी में डुबों देने पर घड़ा भर जाता है उस समय घड़े में अन्दर भी पानी होता है, बाहर भी पानी रहता है। मात्र बीच में मिट्टी की तह रहती है यदि वह टूट जाए तो पानी एक ही, समानता लिए है। सहानुभूति श्रेष्ठतम ऊँचाई है किन्तु लोग उसके अर्थ से अनभिज्ञ हो लोगों को धोखा देते हैं एवं स्वयं धोखा खाते रहते हैं ।

सहानुभूति वह तत्व है जहाँ स्वयं के अलावा और कोई नहीं होता। हम सहानुभूति को अद्वैत कहें, ब्रह्म कहें, परमात्मा कहें, कोई भी नाम दें सभी एक है जहाँ जीवन अपनी चरम ऊँचाईयों एवं स्वात्मोपलब्धि या अनुभूति को प्राप्त सच्चा सुख प्राप्त कर लेता है।

तार कहाँ पर जोडना है :-

एक बार एक नगर में एक सेठ के पास एक कारखाना बहुत अच्छी तरह से चल रहा उसमें लगभग 500 कर्मचारी कार्य कर रहे थे चारों ओर माल भेजा जा रहा था सेठ के पास माल की पहले से बुकिंग चल रही थी एक वक्त पर एक दिन मशीन चलते-चलते बन्द हो गई। आस-पास के कारीगरों को बुलाया मशीन चेक की गई किन्तु कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मशीन में कहाँ पर क्या खराबी है सेठ परेशान था उसने बाहर से इंजीनियर बुलाया उससे मशीन चैक कराई इंजीनियर ने कहा मशीन ठीक हो सकती है लेकिन आपको 10 हजार रुपये देना होगा। सेठ सुनकर दंग रह गया। 10 हजार रुपये, किन्तु करता भी क्या मशीन चालू नहीं हुई तो 500 मजदूर खाली बैठे हैं और

चारों ओर से फोन पर फोन आ रहे हैं माल की सप्लाई के लिए वह पूर्ति नहीं हो पा रही थी आखिर हार कर सेठ ने इंजीनियर के लिए 10 हजार रुपया देने की स्वीकृति दे दी इंजीनियर ने मशीन को अच्छी तरह देखकर एक तार को एक के पास ले जाकर जोड़ दिया और मशीन चालू करने के लिए कहा देखते ही देखते मशीन चालू हो जाती है। इंजीनियर को 10 हजार रुपये देने की बात आती है तो लोग कहते हैं एक तार ही तो जोड़ा है 10 हजार रुपया देने की क्या आवश्यकता है तब कहा गया है-

कहाँ जोड़ना तार है, किसको 'विशद' विवेक।
सही जगह पर जोड़ दे, होता है कोई एक ॥

प्यारे बन्धु जीवन जीना महत्वपूर्ण नहीं है जीवन पाना महत्वपूर्ण नहीं है यदि जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कुछ है तो वह है जीवन की धारा को कहाँ जोड़ना है यह सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है उसी की कीमत है।

❋❋❋

बार-बार मन होता जिनको अपने हृदय बसाने का।
रोम-रोम कहता है जिनके चरणों शीष झुकाने का॥
बने सुरक्षा चक्र रहो, तुम नहीं सोचना जाने की।
तुमको पाकर मन होता है, मस्ती करने गाने का॥

जीवन एक विज्ञान है

जीवन मात्र व्यवहार का नाम नहीं मात्र मकान, दुकान वस्त्र और भोजन का नाम नहीं, मात्र आजीविका के उपाय का नाम नहीं, तिजोरियों और कोठियों को भरने का नाम नहीं बल्कि जीवन आनन्द का अनुभव है। जीवन एक गहन रहस्य है जो जीवन के व्यवहार को ही जीवन मान लेता है वह जीवन के रहस्य से वंचित रह जाता है । मात्र बच्चे पैदा करना और उनकी आजीविका पूर्णकर उसी जीवन चक्र में डुबो देना यह सबसे बड़ी भूल है । यह सब कार्य तो पशु पक्षी भी करते हैं । पक्षी के गर्भ में अण्डे आते हैं तो वह भी घोंसला तैयार करता है अण्डे देता है उन्हें सेता है और बच्चे होने पर उन्हें दाना मुख में लाकर खिलाता है । एक दिन वह बच्चे बड़े होकर अपना घर बसाने लगते हैं यही सब इंसान ने किया तो पशु-पक्षी और पुरुष में कोई अन्तर नहीं होगा ।

वानरों के कहीं कोई घर हैं नहीं ।
कहाँ पक्षी कोई जिसके पर हैं नहीं ॥
नहीं पुरुषार्थ जो कभी करते विशद
नारियाँ हैं सभी वह नर हैं नहीं ॥

पुरुष तो पुरुषोत्तम के मार्ग का आदि बिन्दु है, पुरुष तो पुरुषार्थ का नाम है पुरुषार्थ की यात्रा धर्म से प्रारम्भ होती है और मोक्ष जाने पर अंत होता है किन्तु जो पुरूषार्थ हीन है उसके जीवन में जीवन वीणा के संगीत का आनन्द नहीं हो सकता है, उसके लिए परमात्मा पुकारता भी रहे किन्तु उस आवाज को वह सुन नहीं पाता । जीवन तो अद्वैत असीम अनन्त है आध्यात्म की श्रेष्ठतम ऊँचाई है कुछ पाने और होने का नाम है।

यह जीवन एक सीढ़ी है अगले जीवन के लिए जो तन सीढ़ी है चेतन के लिए। संसार परमार्थ के लिए एक सीढ़ी है किन्तु आकांक्षाएँ उस सीढ़ी को तोड़ने में लगी हैं। इन्सान उन सीढ़ियों को तोड़कर हवा में उड़ना चाहता है किन्तु सीढ़ी के अभाव में इंसान नीचे ही तड़फता रहता ही जीवन है।

इंसान का जीवन खतरे का जीवन है, और जो खतरे में जीता है उसी ने स्वयं को जीता है और जिसने स्वयं को जीता है उसी ने संसार को जीता है।

एक को एक जीतने वाले मिलते है बहुत से शहंशाह।
जो स्वयं को जीते वह महावीर होता है ॥

परमात्मा ने स्वयं को स्वयं के होने का हक दिया है जो अपने इस हक को छोड़ देता है वह परमात्मा द्वारा प्रदत्त सबसे बड़ी देन को छोड़ देता है। प्रत्येक इंसान स्वयं जैसा होने को उत्पन्न हुआ उसके जैसा न कोई पहले हुआ है और न हो सकेगा।

जो एक बार बन जाता है, प्रकट हो जाता है वह दुबारा नहीं होता। महावीर एक बार हो चुके दुबारा नहीं होगें। राम एक बार हो चुके दुबारा नहीं होगें। इस पृथ्वी पर कोई भी ऐसा नहीं है जो एक बार प्रकट हो चुका, फिर हो जाएँ। यहाँ तक कि एक कंकड़ भी सत्रूप है, दुबारा निर्मित नहीं हो सकता है? तो इंसान तो बहुत बड़ी चीज है। हमें स्वयं को स्वयं रूप होना है।

जिंदगी कोई जुल्फ नहीं जो संवर जायेगी।
ये रंगीन दुनियाँ भी आखिर उजड़ जायेगी ॥
ये जिंदगी जो महफिल सी नजर आती है।
फिर नहीं सिमटेगी यदि यह बिखर जायेगी ॥

***

जिंदगी एक शिखर है

जिंदगी औरों का अनुसरण नहीं, स्वयं का उद्‌घाटन है। जिंदगी औरों के जैसा होने की प्रक्रिया नहीं स्वयं जैसा होने का विज्ञान है, आयोजन है जो स्वयं होने की चुनौती को स्वीकार करता है वह महावीर का अनुयायी बनकर स्वयं महावीर बन जाता है, वह वहीं पहुँच जाता है जहाँ महावीर गये है वह वही बन जाता है जो बौद्ध और नानक बने हैं, वह पृथ्वी पर रहकर भी मानवता के उच्च शिखर को प्राप्त कर लेते हैं। उस दशा को प्राप्त कर लेते हैं जिसकी सामान्य इंसान कल्पना भी नहीं कर पाता है । वह प्रभु के राज्य प्रासाद में प्रवेश कर जाते हैं जहाँ से कहीं जाने की आवश्यकता नहीं होती । परमात्मा की वेदी पर अपने ही प्राणों के खिले हुए फूलों को समर्पित करना होता है। विश्व में प्रत्येक इंसान जिंदगी के शिखर की सीढ़ी पर है हमें अनुसरण नहीं अनुकरण करना है। वह तभी सम्भव है जब हम महावीर को समझें, राम और बौद्ध को समझें औरों को समझने पर ही स्वयं को समझा जा सकेगा, औरों की जिंदगी मे संगीत प्रकट हुआ है, और की जिंदगी में फूल खिले हैं, प्रकाश हुआ है, फूल खिले हैं और फूलों की सुवास उठी है उनका अनुशरण करना नहीं बल्कि उनके जीवन में विकसित होने वाले मधुर फलों को देखकर अपने जीवन में उसी प्रकार का उपवन उगाने के लिए है क्योंकि प्रत्येक इंसान के लिए परमात्मा के द्वार पर अपनी चेतना के गुणों को पाना होता है। इसी का नाम पुरुषार्थ है गुणों को पाने का नाम ही पुरुषार्थ है।

मूर्ति नहीं मूर्तिमान की खोज करना है

कहाँ तक बतायें हम मूर्तियों के दास्तान ।
मूर्ति के वंदन से ही होता है सम्यक् दर्शन ज्ञान ॥
मूर्ति का वंदन संसार सागर से पार करने वाला है ।
मूर्ति का वंदन करने वाला बन जाता एक दिन भगवान ॥

सामने रखे हुए दर्पण में जब अपना छाया चित्र नजर आता है तो हम खुश हो जाते हैं हम मानते हैं हमने अपने आप को पा लिया है । आज तक कई दर्पणों में खोजा किन्तु आज तक स्वयं पाया नहीं, कभी फोटो पाकर तो कभी मूर्ति पाकर खुश हो जाते हैं । किन्तु अन्त में यह सब हम नहीं है, दर्पणादि में जो दिखाई दिया वह हम नहीं थे, मात्र भ्रम था, छाया थी ।

जिस दिन दर्पण को तोड़कर, दर्पण से टकराकर अपने शरीर को लहूलुहान होकर उससे पीठ फेर लेते हैं और कहते हैं कि दर्पण में बहुत खोजा अब दर्पण में नही परमात्मा के चरणों में समर्पण करके खोजूँगा और परमात्मा की मूर्ति के सामने खड़े होकर देखता है यह तो वही हैं जो मैं हूँ अथवा जो मैं हूँ वही परमात्मा है, फिर वहाँ से खोज प्रारम्भ करता है आध्यात्मिक समृद्धि प्राप्त करता है।

आध्यात्मिक समृद्धि के लिए भौतिक समृद्धि को तिलांजलि देना होती है । भगवान महावीर सब कुछ छोड़कर छोड़कर चले गये

इसलिए नहीं कि वह समृद्ध थे बल्कि इसलिए कि वह समृद्ध नहीं थे। वह छोड़कर गये, इसलिए नहीं कि छोड़ने योग्य था बल्कि इसलिए कि ग्रहण करने योग्य नहीं था। लेकिन हमें दिखाई पड़ता है कि उन्होंने महल छोड़ा है। हमें दिखाई पड़ता है कि हीरे जवाहरात छोड़े हैं। हमें दिखाई पड़ता है कि धन दौलत छोड़ी। यह हमें दिखाई पड़ता है किन्तु महावीर ने तो कंकड़-पत्थर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं छोड़ा। हीरे- जवाहरात हमें दिखाई पड़ते हैं, महावीर को हीरे-जवाहरात में कंकड़ पत्थर दिखाई पड़ते हैं। सत्य है हीरे-जवाहरात में कंकड़-पत्थरों के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। किसी सुभाषित कार ने कहा है :-

पृथिव्याँ त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितं।
मूढ़ा पाषाण खण्डेषु रत्न संज्ञा विधीयते ॥

जिन्होंने महावीर की कथा लिखी है उन्होंने लिखा है कि इतने हीरे, इतने जवाहरात, इतने माणिक, इतने मोती छोड़े। अगर कोई महावीर से पूछे तो वे कहेंगे-बड़े पागल हो, कंकड़-पत्थरों के भी अलग-अलग नाम रख लिये है। हां अगर महावीर ने कंकड़-पत्थर छोड़े होते तो हम भी नहीं कहते कि कंकड़-पत्थर छोड़ रहे हैं। हम सबने छोड़े हैं!

सभी बच्चे कंकड-पत्थर इकट्ठे करते हैं और फिर एक दिन जब बच्चे से ढोये नहीं जाते तब कंकड़-पत्थर छोड़ देते है। लेकिन किसी बच्चे की जीवनी में हम नहीं लिखते कि इस बच्चे

ने कंकड़-पत्थर छोड़े। क्योंकि हम जानते हैं कि वे कंकड़-पत्थर हैं। जिस दिन हम जानेगें कि महावीर ने कंकड़-पत्थर ही छोड़े। उस दिन हम कहेंगे कि उन्होंने कुछ छोड़ा ही नहीं, आश्चर्य यह नहीं है कि महावीर ने क्यों छोड़ा है? आश्चर्य यह है कि दूसरे क्यों नहीं छोड़ पाते हैं ? महावीर से कोई पूछे तो वे नहीं कहेंगे कि मैंने कुछ त्यागा, क्योंकि त्यागी तो वह चीज जाती है जिसका कोई मूल्य हो।

महावीर कहेंगे कि मैंने कुछ भी नहीं त्यागा, क्योंकि जिसका कोई मूल्य नहीं था उसके त्याग की बात करनी ही व्यर्थ है। आप रोज अपने घर के बाहर कचरा फेंक देते हैं। कभी अखबार में खबर नहीं छपती कि आज इतना कचरा फेंका और इतना रह गया। महावीर के लिए जो हो गया है, उसे उन्होंने त्यागा। यह हक तो उन्हें देना चाहिए न, इतना भी उन्हें देने को हम राजी नहीं। हाँ, हमें दिक्कत है, हमें वह कचरा नहीं दिखाई पड़ता।

एक बच्चे से कंकड़ ले लो तब आपको पता चल जाएगा वह रात भर रो सकता है, सपने में चीख सकता है जैसे उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली गयी जो वह नदी के क़िनारे से इकट्ठे कर लाया था। कोई कहेगा पागल है वह, क्योंकि कंकड़-पत्थर बच्चे को सब रंगीन पत्थर, हीरे, मोती जैसे ही कीमती लगते हैं। असल में बच्चे की सोच के तल और आपकी सोच के तल में जो फर्क है, वही कठिनाई है आपको पत्थर दिखाई पड़ रहे हैं और बच्चे को हीरे जवाहरात।

एकत्रित हुए उन पत्थरों को आप फेंकने का आग्रह करते हैं, बच्चा बचाने का आग्रह करता है । महावीर और हमारे बीच प्रौढ़ और बच्चे वाला फासला है। फिर महावीर के अन्दर एक नई चेतना जाग्रत हुई है जो महावीर को मिला है। यहाँ इस जगत में किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ हमें जो भी दिखाई पड़ता है महावीर के लिए उसका सारा मूल्य खो गया है वह निर्मूल्य हो गया है।

महावीर छोड़ते नहीं है, चीजे स्वयं छूट जाती हैं । जो व्यर्थ हो गई हैं उन्हें ढोना असम्भव है । महावीर छोड़कर जाते नहीं हैं वे जाते हैं, तो चीजें छूट जाती हैं । जो व्यर्थ हो गई हैं। उन्हें रखना असम्भव है। महावीर त्याग कर जाते नहीं हैं । वे जाते हैं, चीजें त्यक्त हो जाती हैं जो व्यर्थ हो गया उसे साथ रखने का क्या अर्थ है। अपने आपको समझदार मानने वाले महावीर के बड़े भाई घर पर रह गए । महावीर के बड़े भाई देखते हैं कि उनके छोटे भाई ने भूल की । हीरे-जवाहरात, धन-दौलत, यश, सुख-सुविधा छोड़कर चला गया है। इन दोनों के बीच प्रौढ़ और बच्चे के मन का फासला है।

महावीर के बड़े भाई दुःखी हैं कि महावीर दुःख उठाने जा रहे हैं, पर महावीर दुःख उठाने नहीं जा रहे है । महावीर तो इतने आनंद से भर गये हैं कि अब दुःख का कोई उपाय ही नहीं रह गया है लेकिन पूछा जा सकता है कि वह वहीं घर पर भी रह सकते थे । जैसे मैंने एक सम्राट् भरत की बात कही, जो महल में था लेकिन महल जिसमें नहीं था ।

महावीर वहाँ भी रह सकते थे, लेकिन यह व्यक्ति के व्यक्तित्व, टाइप और प्रकार की बात है। महावीर नहीं रह सके । यदि महावीर महल में रहते तो महावीर नहीं बन पाते। यह व्यक्ति की बात है और व्यक्ति को परम स्वतंत्रता है। एक के नियम दूसरे पर नहीं थोपे जा सकते । महावीर के लिए जो सम्भव था । वह सम्भव हुआ, महावीर के भीतर जो फूल खिल सकता था, वह खिला, लेकिन फूल खिलने के भी अपने आनन्द हैं। महल के न होकर रहने का अपना आनंद है । महल के भीतर-बाहर, वृक्ष के नीचे रहने का अपना आनंद है । दोनों की कोई तुलना नहीं हो सकती ।

महावीर की समझ ऐसी है कि जब श्वाँस मैं नहीं लेता और जन्म मैं नहीं लेता, जन्म अपने से आता है, श्वांस अपने से आती है, मृत्यु अपने से आती है, तो जीवन की व्यवस्था भी मैं अपने पर क्यों लूँ ? उसे भी परमात्मा पर छोड़ देते हैं । वही इसकी व्यवस्था करे । यह परम आस्तिक का लक्षण है। वह कहते हैं, इंसान अकेला आया अकेला जाता है न कुछ साथ लाया है न ही ले जाता है। कहा भी है :-

आईने के सौ टुकड़े करके हमने देखे हैं ।
एक में अकेले थे सौ में भी अकेले हैं ॥
मोह की इस रजनी में रंजो गम के मेले हैं ।
भीड़ है कयामत की और हम अकेले हैं ॥

दृष्टिकोण अपना-अपना

जिन्दगी नहीं, जिंदगी जीने का ढंग, दृष्टिकोण श्रेष्ठ होता है । जिन्दगी तो सभी जीते हैं कोई हिंसादि पाप करते हुए जीते हैं कोई दया अहिंसादि, धर्म के साथ जीते है। किन्तु जीने का तरीका श्रेष्ठ होता है और वही तरीका व्यक्ति को श्रेष्ठ बनाता है एक घटना है।

घटना : एक नगर में मंदिर का निर्माण हो रहा था । सभी नगरवासी बहुत खुश थे सभी अपनी शक्ति के अनुसार दान दे रहे थे, वहीं पर एक सेठ रहता था । सेठ जैसे होते हैं वैसे ही थे कंजूस 'चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए' टका भी गाँठ से नहीं छूटता था । सेठ के द्वार पर कई भिखारी आते पर खाली ही लौट जाते कभी किसी ने कुछ नहीं पाया।

गाँव वालों ने विचार किया धनपति सेठ से भी कुछ राशि प्राप्त करना चाहिए । कुछ लोग मिलकर सेठ के घर पर गये । मंदिर बनने की बात कही तो सेठ बहुत खुश हुए लोग सोच रहे थे आज तो कुछ लेकर ही जायेंगे, सेठ को प्रभावित करेंगे ।

लोगों ने सेठ से कहना प्रारम्भ किया सेठ जी फलाँ व्यक्ति ने 10 हजार रु. दिये । फलाँ ने 20 हजार रु. दिये । अरे ! वह गरीब है न जो हाथ ठेला चलाता है वह भी पीछे नहीं रहा । उसने 100 रु. मंदिर निर्माण हेतु दान दिया है। सेठ लोगों की बात सुनता तो प्रसन्न होता नजर आता । लोग सोच रहे हैं कि सेठ अवश्य ही प्रभावित हो रहा है आज तो अवश्य ही अच्छी राशि देने वाला है सभी की बात सुनकर सेठ खड़ा हो गया । मैं

आपकी बात सुनकर बहुत ही प्रभावित हुआ प्रसन्न हुआ तब लोगों ने कहा - आप भी कुछ दान दीजिए । तब सेठ ने लोगों से कहा-आप शायद गलत समझे है। मैं दान देने के लिए प्रभावित नहीं हुआ बल्कि दान लेने के लिए प्रभावित हुआ हूँ । जब इस गाँव में इतने बड़े-बड़े दानी लोग हैं तो मैं कल से दान माँगने की योजना बनाऊँगा । मैं आप सब से मिलकर बहुत खुश हूँ, बहुत प्रभावित हूँ । इंसान ऐसे ही प्रभावित होता है।

भगवान महावीर महल छोड़कर सड़क पर आ गये । तब होना यह चाहिए था कि जिसके पास महल थे उन्हें ज्ञात होना चाहिए था कि वह किस व्यर्थ की दौड़ में लगे हैं । जब भगवान महावीर महल छोड़कर आ गये हैं तो हम क्यों व्यर्थ की दौड़ में पड़े हैं। हम तो उनसे आगे हैं कि महावीर को छोड़कर महलों में आ गये। यह इंसान की सबसे बड़ी भूल है। एक कहावत है **'विरोध में आकर्षण होता है '** जैसे स्त्री पुरुष को आकर्षित करती है और पुरुष स्त्री को आकर्षित करता है। इसी प्रकार सभी विरोध में आकर्षित होते हैं आपने देखा होगा त्यागी के पास भोगियों की भीड़ जमा होती है किन्तु आप सोचते हैं कि वह त्याग करने आये हैं तो यह बिल्कुल गलत ख्याल है । वह त्यागी के पास भी भोग खोजने चले आते हैं । कहा भी है :-

लोग सुबह से उठकर रोज मंदिर आते हैं ।
आप यह ना सोचना धर्म करने आते हैं ॥
अरे ! यह तो दीवाने हैं 'विशद' भोगों के ।
संत और भगवंत के पास भी भोग पाने आते हैं ॥

हम लोग महावीर को मानते रहे उनकी आज्ञा को नहीं माना । हम महावीर के चरण छूते रहे, उनके आचरण को नहीं छुआ । हम संतों के चरण छूते हैं, उनके आचरण को नहीं छूते । इसलिए हम उस ऊँचाई को प्राप्त नहीं कर पाते हैं । जिस ऊँचाई को उन्होंने प्राप्त किया है । हम महावीर की मूर्तियाँ बनाते रहे किन्तु स्वयं को महावीर बनाने का प्रयत्न नहीं किया । उनकी पूजा करते रहे किन्तु स्वयं को पूजा योग्य (पूज्य) बनाने का प्रयत्न नहीं किया । महावीर बनने के लिए मूर्तियाँ बनाने मात्र से कुछ नहीं होगा महावीर के गुणों को पाना होगा । जिस प्रकार किसी दूसरे के वस्त्र पहनने के लिए वस्त्रों के समान होना पड़ता है । उसी प्रकार महावीर बनने के लिए अपनी आत्मा को महावीर के समान गुणों से भरना होगा । महावीर के समान ऊँचाईयों को पाने के लिए उच्च गुणों को पाना होगा । अपनी चेतना रूप अनगढ़ पत्थर को तरासना होगा । कहा भी है:-

शाबास ! पत्थरों, अन तरासे थे तो पत्थर थे ।
और जब तरासे गये तो महावीर बन गये ॥

खान से निकले हुए पत्थर को कोई भगवान नहीं कहता। किन्तु पत्थर जब मूर्ति का रूप धारण करता है और संस्कार से संस्कारित होता है तो वह पूज्यता को पा लेता है वह पत्थर महावीर बन जाता है । महावीर बनने के लिए महावीर का नाम ही काफी नहीं है उनके जैसा काम करना होगा ।

जिसका कर्म उस पर ही बरसता है

गीता में श्री कृष्ण के उपदेशों में एक संस्मरण आया है ।

घटना : महाभारत के समय की बात है । जब कौरव और पाण्डवों में घोर युद्ध हुआ था । अनेक पशुओं पर तलवारों की बौछारें हुई थीं । अनेक अबलाएँ सुहाग विहीन हो गई थीं। अनेक पुत्रों पर से पिता का साया उठ गया था । अनेक माताएँ पुत्र विहीन हो गईं थीं । चारों ओर नरसंहार नजर आ रहा था । जगह-जगह पर नर मुण्ड पड़े थे। धरती रक्त से रंगी हुई थी । उस दृश्य को देखकर अनायास ही हृदय द्रवित हो रहा था । पाण्डव युद्ध में तो विजयी हो गये किन्तु स्वयं अपने आप से हार गये थे ।

जैसे ही युद्ध की खुमारी शांत हुई कि पाण्डव युद्ध में होने वाली हिंसा का स्मरण कर खेद और पश्चाताप से भर गये । अनायास ही उनके मुख से निकला हाय! इस अपराध का प्रायश्चित्त क्या होगा ? तब लोगों ने कर्म को धोने के लिए गंगा स्नान की सलाह दी और पाण्डव चल पड़े गंगा स्नान कर कर्म धोने के लिए उनके मन में विचार आया श्री कृष्ण को भी साथ ले लिया जावे । वह श्री कृष्ण जी से भी गंगा स्नान के लिए जाने को निवेदन करते हैं किन्तु श्री कृष्ण ने अपनी असमर्थता बताते हुए अपने प्रतिनिधिरूप में एक कड़वी तुम्बी देकर कहा इस फल को जहाँ आप स्नान करें वहाँ 3 बार स्नान कराना । पाण्डव परिवार हर्षपूर्वक आगे बढ़ चला । गंगाजी में स्नान कर पाण्डव

वापिस लौट रहे थे तो पहले श्री कृष्ण के पास जाकर प्रतिनिधि रूप फल को भेंट करते हुए अपने आसन पर बैठ गये। तब श्री कृष्ण ने पाण्डवों के स्वागत हेतु विचार कर कहा आप तीर्थयात्रा करके वापिस आ रहे हैं आपके स्वागत हेतु यह गंगा में स्नान कर पवित्र किया हुआ फल ही श्रेष्ठ होगा और उस तुम्बी के टुकड़े करके एक-एक टुकड़ा सभी पाण्डवों को प्रदान किया।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः बोलते हुए सभी पाण्डवों ने एक साथ ही तुम्बी का टुकड़ा मुख में लिया और मुख में लेते ही थू-थू करना प्रारम्भ कर दिया। अरे ! यह बहुत कड़वा है मुँह खराब हो गया, तब श्री कृष्ण ने कहा जब गंगा स्नान करने से तुम्बी की कड़वाहट समाप्त नहीं हुई तो आत्मा के कर्म कैसे घुल सकते हैं।

कहा भी है :-

आत्मा नदी संयम तोय पूर्णैः सत्यावहाशील तट दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्रः न वारिणः शुद्धयति ॥

हे ! पाण्डु पुत्रो यदि अपने कर्म धोना चाहते हो तो आत्मा रूपी नदी में स्नान करो, अवगाहन करो। जो संयम के जल से परिपूर्ण है जिसमें सत्य का बहाव है, शील रूपी जिसके तट अर्थात् किनारे हैं, दया और करुणा की जिसमें लहरें उठ रही हों ऐसी नदी में अवगाहन करने से कर्म धुल सकते हैं। मात्र गंगा जल में स्नान करने से तो कर्म धुलते नहीं हैं बल्कि अधिक बंधते हैं, जिसके कर्म हैं उसी के ऊपर बरसते है गंगा स्नान के संबंध में एक घटना याद आती है।

एक दिन एक संत ने गंगा से पूछा हे माँ ! सारी दुनियाँ के लोग आकर अपने पाप आप में छोड़ जाते हैं तो तुम उन पापों का क्या करती हो? उत्तर में गंगा ने कहा बेटा ! मैं उन पापों को अपने पास तो नहीं रखती क्योंकि पाप कोई रखने की चीज नहीं है मैं उन पापों को समुद्र को दे देती हूँ। संत ने पुनः वही प्रश्न समुद्र के पास जाकर किया, आप पापों को कहाँ रखते हो ? समुद्र ने उत्तर दिया - मैं उन्हें अपने पास नहीं रखता हूँ । बल्कि वाष्प को दे देता हूँ । संत ने वाष्प से भी प्रश्न किया तो वाष्प ने भी उत्तर दिया-मैं उन पापों को मेघ (बादल) को दे देता हूँ । संत ने जब पुनः बादलों से प्रश्न किया आप कर्मों को कहाँ रखते हो? तो बादलों ने उत्तर देते हुए कहा -भाई जिसका जो पाप है मैं उसी के ऊपर उसी के घर पर वर्षा देता हूँ । तब सबने पुनः जिज्ञासा प्रगट की अच्छा तो पुण्य को तो अपने पास रखते होंगे । तब मेघ ने कहा- नहीं हमारे पास पुण्य को भी रखने की जगह नहीं है । हम पुण्य को भी उन्हीं के घर वर्षा देते हैं । इसका यही अर्थ है कि अपने कर्मों का पाप और पुण्य का फल स्वयं को ही भोगना पड़ता है । स्वयं के द्वारा किया हुआ पुण्य, पाप स्वयं पर ही बरसता है । अगर आप इस भरोसे में हो कि गंगा स्नान कर पापों से मुक्त हो जाऐंगे तो यह आप का भ्रम है क्योंकि पापों को धोने के लिए आत्मा की गंगा में स्नान करना होगा ।

आज इंसान पाप करते हुए भी हरसते हैं ।
इसलिए तो सुख शांति पाने को तरसते हैं ।।
आपके पाप का फल आपको भोगना पड़ेगा ।
पाप मेघ के जल की भांति स्वयं पर बरसते हैं ।।

खुद का कल्याण खुद करें

हिन्दु साहित्य में एक कथा आती है। उसमें कहा गया है जब पृथ्वी पर हिरण्यकश्यप का अत्याचार अत्याधिक बढ़ गया तो विष्णु जी ने अवतार लिया और नरसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप का नाश किया। और बैकुण्ठ धाम चले गये। कुछ समय बाद बलि ने जन्म लिया और अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया तब पुनः विष्णु जी ने वामन रूप धारण कर बलि को परास्त कर पाताल लोक भेजकर बैकुण्ठ धाम चले गये।

इसके बाद रावण का जन्म हुआ और उसने तीन खण्ड का राज्य प्राप्त कर अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना प्रारंभ कर दिया तो विवश होकर भगवान को पुनः अवतार लेना पड़ा और राम के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए और सीता हरण के बहाने राम ने रावण का अन्त किया। कहा भी है :-

अत्याचार मिटाने हेतु प्रभु श्री राम ने अवतार लिया।
सीता हरण का किया बहाना रावण का संहार किया॥

इसके पश्चात् अन्त में श्री कृष्ण के रूप में अवतरित हो कर कंस और जरासन्ध के अत्याचारों से संसार को मुक्ति दिलाई। तथा महाभारत के काल में कौरव पाण्डवों में भयंकर युद्ध हुआ और आपस में कट मरे। यदुवंश का विनाश हो गया। खेद में डूबे हुए श्री कृष्ण एक दिन पीपल वृक्ष के नीचे एक पैर के ऊपर दूसरा पैर रखकर लेट गये उसी बीच एक शिकारी ने पैर में चमकते हुए पद्म को देखकर हिरण के धोखे तीर चला दिया जिसके कारण प्राण निकलने को थे तभी सारथी ने देखा कि उनका अन्तिम समय है तो पूछा-भगवान कोई

संदेश कहना हो तो मुझसे कहो । मैं आपका संदेश सारी दुनिया को सुना दूँगा । तब श्री कृष्ण ने कहा था - **उद्धरेदात्मनात्मानम् ।**

अर्थात् नारायण कृष्ण ने कहा अब मैं बहुत थक चूका हूँ और आगे अवतार नहीं लूँगा । अब प्रत्येक आत्माएं स्वयं अपना उद्धार करें इस आधार पर इंसान को अपना उद्धार स्वयं करना होगा।

कोई किसी का उद्धार नहीं कर सकता। हे भव्य आत्माओ! अब तुम्हें स्वयं ही राम, बुद्ध और कृष्ण बनना होगा ।

अवतारवाद हिन्दू साम्प्रदाय की मान्यता है । किन्तु जैन धर्म में अवतारवाद नहीं बल्कि तीर्थंकर होने का सिद्धान्त मान्य है। अवतार और तीर्थंकर में बहुत बड़ा अन्तर है। अवतार का अर्थ है नीचे की ओर आना और तीर्थंकर का अर्थ है नीचे से ऊपर की ओर जाना । विष्णु, राम, कृष्ण अवतारी पुरुष हैं जबकि ऋषभ आदि महावीर पर्यन्त तीर्थंकर पुरुष हैं।

तीर्थंकर और अवतार यह सैद्धान्तिक अवधारणा है, अलग-अलग मान्यताएँ हैं हमें तो लक्ष्य को ध्यान में रखना है कि स्वयं का उद्धार स्वयं करें

भो ! आत्मन् पाप शाप से सदैव डरना होगा ।
पुण्य से अक्षय कोष को अपना भरना होगा ॥
कर्म भूमि में कर्म करने पर ही फल प्राप्त होगा ।
अतः पुरुषार्थ कर स्वयं का उद्धार करना होगा ॥

यह जीवन एक चुनौती है, एक संग्राम है इसमें जो पौरुष दिखाता है वह विजय श्री को प्राप्त कर लेता है। पौरुष हीन पराजित की भांति संसार में लौट जाता है और अतीत के गर्त में खो जाता है।

मौत निश्चित भी अनिश्चित भी

विश्व में मौत के समान निश्चित और अनिश्चित कुछ भी नहीं है। जिसने भी जन्म लिया है उसकी मौत अवश्य ही होगी। यह अकाट्य सत्य है लोग मौत से डरते हैं घबराते हैं । वह कितने भी घबरावें वह छोड़ने वाली नहीं है। अरे ! मौत कोई शत्रु नहीं है डर तो शत्रु का होता है मौत तो अपना परम मित्र है मित्र से डर कैसा ? यदि मौत नहीं होती तो संसार में हाहाकार मच जाता । चारों ओर जिन्दा लाशें पड़ी नजर आतीं । यानि कि सारा विश्व वृद्धजनों से भर जाता । यह मौत का ही बहुत बड़ा उपकार है कि इंसान को जीवन में नयापन देता है।

मौत नव जीवन का श्रृंगार है :- इंसान की आयु पूर्ण होने पर नया नवेला सुन्दर चमकता हुआ तन जो प्राप्त हुआ है यह मौत की ही बलिहारी है। मौत के लिए जो डरता है उसे मौत दबोच लेती है और जो साहस करके खड़ा हो जाता है उसके सामने दुम हिलाती है किसी शायर ने कहा है :-

कौन कहता है कि मौत आयेगी तो मर जाऊँगा।

अरे ! मैं तो दरिया हूँ समन्दर में उतर जाऊँगा ।

जिस प्रकार दरिया (नदी) आगे बढ़ती रहती है । अपनी गति से तो एक न एक दिन सागर में समा जाती है उसी प्रकार जो मौत को

जीत लेता है वह अनन्त सिद्धों के बीच अनन्त सुख के सागर में समा जाता है। यह जीवन हमारे लिए बड़ा वरदान है, उपहार है । इंसान चाहे तो परमात्मा बन सकता है यदि इंसानियत को नहीं पाया तो पामर बनने से कोई रोक नहीं पाएगा । कहा भी है :-

पनही बनती पशु की नर को कछु न होय ।
नर यदि नर करनी करे तो नारायण होय ॥

तन से सभी मनुष्य एक समान हैं किन्तु मन से भिन्न-भिन्न हैं। शायद ऐसा लगता है जैसे एक ही सांचे में सभी मनुष्यों को ढालकर भेजा हो । एक दिन प्रभु के दर्शन करते समय बात स्मरण हो आई :-

साँचे में ढालकर भेजा है कुदरत ने तुम्हें ।
आवश्यकता मात्र तरासने की है ॥
खान से निकलकर आते हैं सभी पत्थर एक से ।
जो तराशा गया वह भगवान बन गया ॥

प्यारे बन्धु तराशा हुआ पत्थर मूर्ति का रूप पाता है और मूर्ति भी संस्कार पाकर भगवान बनती है।

संस्कार हैवान को भी इंसान बना देता है ।
संस्कार इंसान को विद्वान बना देता है ॥
संस्कार 'विशद' शिल्पी का अरे ! भाई ।
संस्कार पाषाण को भी भगवान बना देता है ॥

एक पत्थर भी संस्कार पाकर भगवान बन जाता है किन्तु संस्कार विहीन जमीं पर पड़ा रहता है एक भजन में कहा है :-

इस जनम में न सही पर भव में मिलता है ।
अपनी-अपनी करनी का फल सबको मिलता है ।
एक पत्थर वह है जिसकी मूरत बनती है ।
एक पत्थर वह है जो सड़कों पर बिछता है ।
पत्थर दोनों साथ ही पर्वत से निकलता है ।

अपनी-अपनी ....

संस्कारों को उजागर करने के लिए एक कहानी आती है :-

एक बंजारा रोज रास्ते से गुजरता था, रास्ते में एक पत्थर से उसका पैर टकरा जाता था । एक दिन बंजारे ने पत्थर को खोदकर रास्ते से दूर पहाड़ के नीचे से लुड़काया तो जाकर नदी किनारे रुका । वहाँ वृक्ष पर सुन्दर फूल खिले हुए थे । एक फूल ने इतराते हुए कहा । रे! पाषाण भाई आपकी दशा को देखकर मुझे बहुत तरस आ रहा है । पहले आप रास्ते में लोगों के पैरों की ठोकरें खाते थे । आज यहाँ लोगों के पैर घिसे जा रहे हैं । और कपड़े धोये जा रहे है। तभी एक शिल्पकार आया और एक हथोड़े की ठोकर लगाई पत्थर ने उसे सहन कर लिया तब पत्थर को शिल्पकार ने उठाकर सिर पर रख लिया और अपने घर को चल दिया । पत्थर अब फूला नहीं समा रहा था । तभी शिल्पी ने पत्थर को जमीं पर पटक दिया । पुनः

एक ठोकर को सहन किया अब तो पत्थर ने संकल्प ही कर लिया कितनी भी ठोकरें क्यों न खानी पड़ें किन्तु टूटेंगे नहीं और फिर शिल्पी ने मूर्ति गढ़ना प्रारम्भ किया । अनेक ठोकरें दी, नुकीले औजारों से तराशा गया फिर भी सहन किया । मूर्ति गढ़ते ही एक भव्य भक्त मूर्ति प्रतिष्ठा हेतु ले गया । प्रतिष्ठा के समय दर्शनार्थ जा रहे लोगों ने उसी वृक्ष के फूलों को तोड़ा और मूर्ति के चरणों में चढ़ा दिया । फूल ने मूर्ति को देखकर कहा मैंने आपको कहीं देखा है तब पाषाण ने कहा मैं वही पत्थर हूँ जिसे लोग पैरों की ठोकर लगाते और घिसते थे। किन्तु आज लोग मेरे पैरों में शीश रखते है। मेरे चरणों का जल अपने शीश पर चढ़ाते हैं। यह सब मेरी संकल्प शक्ति का फल है तथा संस्कारों का प्रभाव है ।

कीमत इंसान की नहीं उसके ज्ञान की होती है ।
कीर्ति और ख्याति, शैतान की नहीं, गुणवान की होती है ॥
कौन कहता है कि लोग पत्थरों को पूजते हैं ।
पूजा मूर्ति की नहीं 'विशद' मूर्तिमान की होती है ॥

❋❋❋

जीवन भर हम रहे, भीगते जिनकी कृपा फुहारों से।
जनम-जनम तक ऋणी रहेंगे, जिनके हम उपकारों से॥
बार-बार मन होता, उनके चरणों में झुक जाने का।
हृदय कमल पर तिष्ठो, मेरे नाम न लेना जाने का॥

सुख शांति की खोज

पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। उसी को प्राप्त करने के लिए दिन-रात प्रयत्न करता है। किन्तु आश्चर्य है कि आज तक वास्तविक सुख प्राप्त नहीं हुआ। एक ओर से सुखी होता है तो दूसरी ओर से दुःखी नजर आता है। इसका कारण है आज तक सुख की परिभाषा को नहीं जाना है। प्रश्न है कि **सुख क्या है ?**

भगवान महावीर कहते हैं कि निराकुलता का नाम सुख है।

'आतम को हित, है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिए' अर्थात् आत्मा का हित सुख है वह सुख आकुलता से रहित होता है। किन्तु यह अज्ञानी प्राणी दुःख के, आकुलता के हेतु निरन्तर एकत्र कर रहा है और सुख की खोज कर रहा है। यह तो अग्नि में शीतलता खोजने जैसी बात हुई। जब बच्चे का जन्म होता है। तब मात्र उसे पेट भरने का विकल्प रहता है। किन्तु कुछ बड़ा होते ही खिलौनों से पहिचान होती है। खिलौना पाते ही खुश हो जाता है और न मिलने पर दुःखी हो जाता है। कुछ और बड़ा होता है अपनी माँ को पहिचानने लगता है माँ मिलती है तो सुखी हो जाता है और माँ नहीं मिलती तो दुःखी हो जाता है। साथ ही अपने परिवार वालों से पहिचान होने पर उनके पाते ही सुखी हो जाता है और उनके न मिलने पर दुःखी हो जाता है कुछ और बड़ा होता है तो पढ़ने के लिए

विद्यालय जाता है। मित्रों से पहिचान होती है उनके मिलने पर खुश होता है और न मिलने पर दुःखी होता है तथा पढ़ने पर यदि विषय तैयार हुआ तो खुश अन्यथा दुःखी होगा । परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया तो खुश अन्यथा दुखी और यदि कदाचित् पढ़कर सम्पूर्ण डिग्री प्राप्त करता तो भी क्या सुखी है? उसे योग्य सर्विस की चिन्ता लग जाती है। निरन्तर परिश्रम करता है आफीसरों से मिलता है कई बार हारकर निराश हो जाता है और यदि सर्विस भी मिल जाए तब भी साथी, कर्मचारी या आफिसर अनुकूल नहीं मिलने पर दुःखी देखा जाता है और वह भी सब ठीक हो जाए अब तो कोई विकल्प नहीं कोई दुःख नहीं ? तो उत्तर मिलेगा अब भी दुःखी है क्योंकि जिसके लिए यह सब कुछ किया वह तो अभी प्राप्त नहीं हुआ । यानि अब शादी के लिए, पत्नी के लिए दुःखी है। पत्नि प्राप्त हो गई तो खुश हो गया, सुखी हो गया, नहीं मिली तो दुःखी हो जाता है। और पत्नि अनुकूल रही तो सुखी और प्रतिकूल रही तो दुखी हो जाता है। अभी तक तो विकल्प गढ़ना क्रम से बढ़ रहे थे । किन्तु अब गुणित क्रम में बढ़ने लगते हैं। स्वयं की आवश्यकता तो एक है किन्तु पत्नि की आवश्यकता चार गुणी है और पत्नि प्राप्त होने पर भी क्या विकल्प शांत हो गये, सुखी हो गया क्या ? पत्नि प्राप्त होने पर भी यदि 1-2 वर्ष व्यतीत होते ही पुत्र प्राप्त न हो तो चिंता बढ़ जाती है और दर-दर पर पुत्र की भीख मांगने के लिए घूमने लगता है और पुत्र भी किसी पुण्य के उदय से प्राप्त हो जाए तो उसके पालन पोषण की चिंता बढ़ जाती है । विकल्प प्रारम्भ हो जाते है चिंता के बारे में कहा है :-

चिंता चिता समान है बिन्दु मात्र का फेर ।
चिता दहे निर्जीव को चिंता जीव समेत ॥

अर्थात् चिंता वह धीमी आग है जो इंसान को निरंतर धीमे- धीमे जलाती रहती है चिंता चिता से ज्यादा घातक है ।

इंसान की समझ को देखकर तरस आता है कि इंसान अज्ञानता के कारण अनेक विकल्पों को, चिन्ताओं को एकत्र कर रहा है और फिर भी सुख के स्वप्न संजोए है। वासना के गर्त में डूब रहा है और सुख शांति की कल्पना कर रहा है। आ. पूज्यपाद् स्वामी ने कहा है :-

वासना मात्रमेवै तत् सुखं दुखं हि देहिनाम् ।
तथा ह्युद्वेजयत्येते भोगा रोगा इवापादि ॥

अर्थात् संसारी प्राणी इन्द्रियों के विषय में सुख-द्;ख की खोज कर रहा है जो कल्पना मात्र है। इन्द्रिय-भोग रोगों की तरह आकुलता उत्पन्न करते हैं । उदाहरण देते हुए कहा है जिस प्रकार किसी इंसान के लिए खुजली होती है तो जिस समय खुजली खुजाता है तब उसे बहुत आनन्द आता है। कहा भी है :-

दाद खाज अरु सेउआ बड़भागी के होय ।
पड़े खुजावे पलंग पर आनंद मंगल होय ॥

किन्तु खुजली खुजाने के बाद वह कितनी पीड़ा दायक होती है। कि इंसान तड़प जाता है। पीड़ा से चीखने लगता है। उसी प्रकार भोगी जब भोगों में लीन रहता तब उसे कुछ भी भान नहीं रहता

समय बीतने पर जब वृद्ध हो जाता है तो भोगी चित्त भोगों की इच्छा करता है किन्तु भोग नहीं पाने के कारण दुखी और बैचेन हो जाता है। भोगी का तन, मन और धन सभी कुछ नाश होता रहता है। किन्तु वह अज्ञान के कारण उसी में आनन्द मानता है। जिस प्रकार कुत्ता हड्डी चबाता है तो उसके मुख में दाढ़ों के छिल जाने से स्वयं के ही रक्त का स्वाद आता है । किन्तु वह सोचता है कि हड्डी से रक्त का स्वाद आता है उसी प्रकार भोगी इंसान की दशा है । इन्द्रिय के विषय भोग में स्वयं का घात करता रहता है स्वयं के तन-मन की क्षति करता है और आनन्द मनाता है। किन्तु योगी तन, मन, धन सभी से स्वस्थ रहता है और स्व में स्थित होता है । अतः भोगी बनकर नहीं योगी बनकर ही परम सुख की प्राप्ति की जा सकती है । यही सुख शांति का मूल मंत्र है :-

जिन्दगी कठिनाइयों में जो जिए हैं ।
जीवन चेतना की गहराइयों में जो जिए हैं ।
जीवन का आनन्द उन्हीं ने पाया प्यारे भाई ।
योग की तनहाइयों में जो जिए हैं ॥

❋❋❋

जब तक स्वयं आपसे, अपनी कर न सके जीव पहिचान।
तब तक पूजा पाठ पढ़न सब, धर्म क्रिया भी है अज्ञान॥
सम्यक् ज्ञान रहित कोई, भी क्रिया करें जग के नादान।
'विशद' ज्ञान को पाने वाले, बन जाते क्षण में भगवान॥

पण्डित	- श्री दिनदयालजी	मुख्य पात्र	- विजयकुमारजी
सेठ	- फूलचन्द्र	सेठानी	- फूलादेवी
पुत्र	- बुद्धूराम, अंकिलजी	बुआ	- तेजो बाई
दाई	- टुन-टुन		
अन्य	- राहगीर, अन्य विद्यार्थी, पड़ौसी, गुरुजी		

(प्रथम दृश्य)

गुरुकुल में अनेक स्थानों से आकर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

सेठ फूलचन्द्र— अरी ! फूला दरवाजा तो खोल। आज बहुत थक गया हूँ। जयपुर में घूमते-घूमते महावीर जयंती का जुलूस निकल रहा था। सारे वाहन टैक्सी आदि नहीं मिले। घूम-घूमकर सामान खरीदना पड़ा।

फूलादेवी— दरवाजा खोलते हुए आज बहुत लेट हो गये। हम तो सोच रहे थे कि वहीं रुकेंगे आयेंगे ही नहीं।

सेठ फूलचन्द्र— मैंने सोचा फूला अकेली है, घबराएगी रात को तो पहुँचना जरुरी था। (शांतिपूर्वक बैठकर)

फूलादेवी— तुम्हें पता है आज मूलचन्द्र के यहाँ लड़का हुआ है, उसी के बाजे बज रहे है; लेकिन पता नहीं भगवान हमारी सुनेगा भी कि नहीं और रोना प्रारम्भ कर दिया।

सेठ फूलचन्द्र— (धैर्य बंधाते हुए) फूला चिंता न करो, अवश्य ही प्रभू अपनी इच्छा पूरी करेगा।

फूलादेवी— कई साल तो हो गये हैं, सब डॉक्टरों को दिखा दिया। सब दवाई खा ली, पर क्या हुआ ?

(गले से लिपटकर रोते हुए, ऐ मोरे दइया परमात्मा मोरी कब सुन है।)

सेठ फूलचन्द्र— कल दुलीचंद्र बता रहा था कि अपने यहाँ पण्डितजी महाराज आये हैं। वह आशीर्वाद देते तो सब काम सिद्ध हो जाता है, कल हम भी आशीर्वाद लेने चलें।

फूलादेवी— प्रसन्नतापूर्वक, अच्छा जरूर चलना। (पं.जी महाराज के पास जाकर नमोस्तु करते हैं।)

सेठ फूलचन्द्र— नमोऽस्तु करते हैं और बैठ जाते हैं।

महाराजश्री हम बहुत परेशान हैं यह फूला हमेशा रोती रहती है न खाती न पीती, रात में भी सोते-सोते चौंक जाती है।

पण्डितजी— क्यों, क्या बात है ?

फूलचन्द्र— शादी हुए 5 वर्ष हो गए; किंतु अभी तक

पण्डितजी— क्या मतलब !

फूलचन्द्र— हाँ पण्डितजी साहब।

पण्डितजी— तुम्हारा नाम क्या है ?

फूलचन्द्र— पण्डितजी- फूलचन्द्र।

पण्डितजी— अच्छा तुम मंदिरजी तो रोज जाते होंगे।

फूलचन्द्र— पं. जी अकेले हैं। घर में सुबह उठके नित्य क्रिया से निवृत्त हुए और दुकान चले जाते हैं और यह फूला अपने घर के काम-काज में लग जाती है तो कहाँ टाईम मिल पाता है ? हाँ, दीपावली और व्रतों में (भादों) जरूर जाते हैं।

पण्डितजी— हे भगवन् ! तुम मंदिर भी नहीं जाते। कैसे सफलता मिले, अच्छा तो तुम पुत्र प्राप्त करना चाहते हो ?

फूलचन्द्र— हाँ पंड़ितजी साहब। — तो तुम्हें सुबह उठकर मंदिर जाना होगा एवं पूजन भी करनी पड़ेगी। और लो यह मंत्र का भी प्रतिदिन जाप करना है- णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।

पण्डितजी— आशीष देते हुए। हे भक्त ! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो। ''दूधो नहाओ पूतो फलो''

पण्डितजी— सभी लोग मंदिर की ओर जाते हैं।

***

दर्शन पाठ

(तर्ज : दिन रात मेरे स्वामी...)

यह भावना हमारी, प्रभु दर्श तेरे पाऊँ।
पल-पल प्रसन्न मन से, नवकार मंत्र ध्यायूँ।।
चउ घातिया करम का, जिसने किया सफाया।
अपने हृदय कमल पर, अर्हंत को बसाऊँ।। यह भावना...
नो कर्म भाव द्रव से, जो मुक्त हो गये हैं।
उन शुद्ध सिद्ध जिन को, मैं शीष पर बिठाऊँ।। यह भावना...
आचार पाँच पालें, पालन कराएँ सबको।
आचार्य परम गुरु को, मैं कंठ में सजाऊँ।। यह भावना...
जो अंग पूर्वधारी, पढ़ते मुनि पढ़ाते।
मुख के कमल बिठाकर, उनके गुणों को गाऊँ।। यह भावना...
सद्ज्ञान ध्यान तप में, खोये सदैव रहते।
उन सर्वसाधुओं को, नाभि कमल में ध्यायूँ।। यह भावना...
श्रद्धान, ज्ञान, चारित, सद्धर्म ये रतन हैं।
अहिंसा मयी धरम के, धारण में लौ लगाऊँ।। यह भावना...
वाणी जिनेन्द्र की शुभ, हितकारणी कही है।
जिनदेव की सुवाणी करके, श्रवण कराऊँ।। यह भावना...
जिन का स्वरूप जिनके, प्रतिबिम्ब में झलकता।
जिन तीर्थ वंदना कर, नित चैत्य दर्श पाऊँ।। यह भावना...
त्रैलोक्य में विराजित, जिन चैत्य अरु जिनालय।
तन, मन 'विशद' वचन से, मैं वंदना को जाऊँ।। यह भावना...

इत्याशीर्वादः

(द्वितीय दृश्य)

फूलादेवी— अरे सुनते हो ! प्रभू ने अपनी पुकार सुन ली। अपने घर में भी पुत्रोत्पन्न होने वाला है। हे प्रभू ! तुम्हारी जय हो।

फूलचन्द्र— अच्छा तब तो बहुत अच्छा हुआ। हम तो अपने बेटे को इंस्पेक्टर बनाएंगे।

फूलादेवी— नहीं हम तो अपने बेटे को डॉक्टर बनाएँगे।

फूलचन्द्र— नहीं इंजीनियर

फूलादेवी— नहीं डॉक्टर

फूलचन्द्र— इंजीनियर

फूलादेवी— धक्का देते हुए डॉक्टर

फूलचन्द्र— धक्का देते हुए इंजीनियर

फूलादेवी— बर्तन फैंकते हुए डॉक्टर

फूलचन्द्र— बर्तन फैंकते हुए इंजीनियर

आस पड़ौस के लोग एकत्रित होकर देखने पर कहते अरे ! भाई अभी तक रत्नों की वर्षा सुनी थी किन्तु ये बर्तनों की वर्षा कहाँ से प्रारम्भ हो गई।

(तभी एक ज्ञानचंद्र अंकलजी घर में प्रवेश करते हुए)

ज्ञानचन्द्र— अरे ! भाई फूलचंद्र क्या बात हुई है।

फूलचन्द्र— इंजीनियर बनाएंगे।

फूलादेवी— डॉक्टर बनाएँगे।

ज्ञानचन्द्र— अरे ! भाई किसको बनाना है डॉक्टर-इंजीनियर।

फूलचन्द्र— अपने बेटे को बनाएंगे।

ज्ञानचन्द्र— अरे ! भाई शांत रहो। डॉक्टर या इंजीनियर तुम्हारे बनाने से क्या होता बच्चे को बुलाकर उससे पूंछ लो वह क्या बनना चाहता है?

ऐसा सुन दोनों शर्मिंदा हो जाते हैं और धीरे से कहते हैं।

फूलचन्द्र— बच्चा तो अभी हुआ नहीं है अब होगा।

ज्ञानचन्द्र— तो फिर अभी से झगड़ा क्यों खड़ाकर दिया। अब शांत रहना। (पर्दा गिराता है)

समय पर फूलचंद्र के घर पर बच्चा पैदा हुआ। खुशियों का वातावरण छाया है। संबंधीजनों ने मंगलाचार किया। बच्चे का नाम रखा गया बुद्धूराम।

जयपुर नगरी बन गई दुल्हनियाँ, घर-घर मंगलाचार धरती झूमे अंबर झूमे, रत्न गगन से वर्षे।

कि सब मिल जय बोलो.....

बच्चा कुछ बड़ा हुआ और माँ-बाप ने उसे जैन स्कूल में प्रवेश दिलाया। वह प्रतिदिन स्कूल जाता। एक दिन शिक्षक महेन्द्र ने बच्चे से प्रश्न किया।

शिक्षक— मुकेश बताइये, मंदिर किसे कहते हैं किस प्रकार का होता है?

मुकेश— सर, मंदिर जहाँ भगवान विराजमान होते है तथा नारियल के आकार का गुम्बदनुमा हो।

शिक्षक— विनोद बताइये, शेर कैसा होता है ?

विनोद— शेर बिल्ली के आकार का होता है। बहुत जोर से दहाड़ता है।

शिक्षक— बुद्धूराम बताइये गधा कैसा होता है ?

बुद्धूराम— (नीचे सिर करके खड़ा रह जाता है।)

शिक्षक— डाँटते हुए बुद्धू बोलो ना गधा कैसा होता है ?

बुद्धूराम— फिर भी नीचे की ओर देखता हुआ।

शिक्षक— बुद्धू मेरी ओर देखो और बोलो गधा कैसा होता है ?

बुद्धूराम— शिक्षक की ओर देखते हुए सर गधा आपके जैसा होता है।

शिक्षक— ने सुना तो चौंक गया, कैसे-कैसे विद्यार्थी स्कूल में आते है, शिक्षक को ही गधा कहते हैं।

प्रिंसीपल ने स्कूल में आकर बच्चों से बात करते हुए बुद्धू से पूछा (प्रिंसीपल) शिक्षक- बेटे तुम्हारा क्या नाम है ?

बुद्धूराम— सर बुद्धू।

प्रिंसीपल— बड़ा प्यारा नाम है।

बुद्धूराम— तो आप चेंज कर लीजिए (हंसी)

शिक्षक— बुद्धू कल स्कूल क्यों नहीं आये।

बुद्धूराम— सर गिर गये थे तो लग गई थी।

शिक्षक— कहाँ गिर गए थे क्या लग गई थी ?

बुद्धूराम— सर पलंग पर गिर गए थे तो नींद लग गई थी।

शिक्षक— बुद्धू एवं राजू तुम दोनों देर से क्यों आए हो?

राजू— सर मेरे पापा ने टॉफी के लिए चवन्नी दी थी। आते वक्त गिर गई थी उसे खोजते रहे इसलिए देर हो गई।

शिक्षक— बुद्धू तुम क्यों लेट हुए ?

बुद्धूराम— सर राजू की चवन्नी पैर के नीचे दबाएं थे इसलिए देर हो गई।

कुछ समय बात परीक्षा का समय आ गया। परीक्षा पूर्ण होते ही छुट्टियों में सभी बच्चे यत्र–तत्र घूमने चले जाते हैं।

परीक्षा परिणाम आने पर फूलचन्द्र ने बुद्धूराम से पूछा, क्यों बेटे पास हो गये कि नहीं।

बुद्धूराम— हाँ पास हो गये और कुछ आगे हो जायेंगे।

फूलचन्द्र— मतलब !

बुद्धूराम— सप्लीमेन्ट्री आई है।

फूलचन्द्र— अबे ! नालायक कहीं का, पास भी नहीं हुआ और इस तरह से बोलता है।

बुद्धूराम— तो कैसे बोला जाता है। तुम्हीं बोलकर बता दो।

फूलचन्द्र— डॉटते हुए, अबे ! तुझे शर्म नहीं आती है। ट्यूशन पढ़ाते हैं, इतना खर्चा करते हुए पास भी नहीं हो पाता है। वह पड़ौसी का पप्पू है न फर्स्ट डिवीजन से पास हुआ है।

बुद्धूराम— हाँ, हम भी हो जाएंगे।

फूलचन्द्र— जब जवाहर लाल नेहरु तेरे बराबर थे तो हमेशा फर्स्ट डिवीजन से पास होते थे।

बुद्धूराम— हाँ ! हमको पता है। जब जवाहर लाल नेहरु हमारे बराबर थे तो फर्स्ट डिवीजन पास होते थे। जब तुम्हारे बराबर थे तो देश के प्रधानमंत्री थे। तुम उनके चपरासी भी नहीं बन पाएँ। (हंसी)

स्कूल में अनेक विद्यार्थी अध्ययन कर रहे थे। उनमें बुद्धूराम हमेशा शैतानी किया करता था। किंतु पढ़ने लिखने नाम पर शून्य था। एक दिन गुरुजी ने कहा— बुद्धूराम

बुद्धूराम— हाँ गुरुजी।

गुरुजी— बुद्धूराम, कल पिताजी को साथ लेकर आना। तुम्हारी शिकायतें बहुत आ रही है। कल तुम्हारे पिता से शिकायत करेंगे।

बुद्धूराम— पिताजी नहीं आ सकते।

गुरुजी— बुद्धूराम हमने बोला ना ! कल तुम्हें पिता को लाना होगा।

बुद्धूराम— गुरुजी ! यदि पिताजी आयेंगे तो हम नहीं आएंगे।

गुरुजी— नहीं, दोनों को आना होगा।

बुद्धूराम— गुरुजी आप समझने की कोशिश करो। हम दोनों एक साथ नहीं आ सकते।

गुरुजी— क्या समझने की कोशिश करना है।

बुद्धूराम— हमने कह दिया ना। यदि पिताजी आयेंगे तो हम नहीं आयेंगे और हम आयेंगे तो पिताजी नहीं आयेंगे।

गुरुजी— आखिर ऐसी क्या बात है?

बुद्धूराम— यदि आप नहीं मानते हैं तो हम अकेले में बताएंगे। (चलिये)

गुरुजी— हाँ बताओ।

बुद्धूराम— गुरुजी बात यह है कि हमारे पास चड्ढी एक है। हम पहनकर आ जाते हैं तो वह कैसे आये और वह पहनकर आ जाएंगे तो हम कैसे आयेंगे । (हंसी)

बुद्धूराम घोड़े पर बैठकर शहर गया था। वहाँ पर एक चौराहे पर एक व्यक्ति आवाज लगा रहा था। खरीदिए, खरीदिए मात्र 200 रुपये में बी.ए. की डिग्री।

बुद्धूराम— क्या यह डिग्री मैं भी ले सकता हूँ ?

व्यक्ति— हाँ ! आप भी 200 रुपये में डिग्री ले सकते है। (मन में प्रसन्न होते हुए शादी के लिए कोई...)

बुद्धूराम— ठीक है हमको दे दीजिए।

व्यक्ति— लो यह 200 रुपये की डिग्री।

बुद्धूराम— डिग्री लेकर आगे बढ़कर जाता है रास्ते में विचार करता है 200 रुपये में बी.ए. की डिग्री बहुत सस्ती है। यदि पढ़ते हैं तो 15 वर्ष तक मेहनत करनी पढ़ती है। ऊपर से खर्चा भी होता है इसीलिए एक और खरीद लेना चाहिए पुन: व्यक्ति के पास जाकर।

बुद्धूराम— एक डिग्री दीजिए।

विक्रेता— अभी आप एक डिग्री लेकर गये थे।

बुद्धूराम— डाँटते हुए हाँ अपने लिए ली थी।

विक्रेता— फिर किसको चाहिए।

बुद्धूराम— मैं अपने घोड़े को लेना चाहता हूँ।

विक्रेता— हमारे यहाँ डिग्री घोड़ों के लिए नहीं गधों के लिए दी जाती है।

आगे जाकर देखकर दुकान पर बोर्ड लगा था, उसमें लिखा था हमारे यहाँ शादी का सारा सामान मिलता है। दुकान पर पहुँचकर।

बुद्धूराम— भाई साहब ! शादी का सामान दिखाईये।

दुकानदान— हाँ बोलिए क्या दिखाएँ ? सूट, पगड़ी, अचकन, जूते, मोजे, कटार, शाल क्या दिखाएँ। श्रृंगार सामग्री दिखाएँ या भांवर चडावा की सामग्री।

बुद्धूराम— अरे ! यह सब तो ठीक है पहले लड़की तो दिखाओ। (हँसी)

कुछ समय बाद बुद्धूराम की शादी हो गई। एक दिन मित्रों के साथ बैठकर चर्चा कर रहे थे कि गोपाल ने कहा मैं दिल्ली में सर्विस करता हूँ। गोविंद ने कहा— मैं मुम्बई में ज्वैलरी का काम करता हूँ। गणेश ने कहा— मैं सूरत में वस्त्रों का व्यापार करता हूँ। सुनकर बुद्धूराम सोचने लगा मैं तो कहीं कोई काम नहीं करता। मित्रों ने उसे निकम्मा कह डाला। बुद्धूराम घर पहुँचकर पिताजी मैं तो विदेश कमाने के लिए जाऊँगा।

फूलचन्द्र— बेटा तुम्हारे पास सब कुछ है। तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है।

बुद्धूराम— पिताजी नहीं। मैं तो व्यापार करने जाऊँगा।

फूलचन्द्र— आखिर क्या बात हो गई। जो तू विदेश जाना चाहता है।

बुद्धूराम— हमारे सभी मित्र कमाने के लिए विदेश जाते हैं। मैं निकम्मा बैठा रहता हूँ।

फूलचन्द्र— उनके पास कुछ नहीं है इसलिए वह बाहर कमाने जाते हैं। अपने लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है।

बुद्धूराम— मैं घर पर नहीं रहूँगा।

फूलचन्द्र— तू कहाँ पर रहना चाहता है।

बुद्धूराम— मैं तो विदेश जाऊँगा।

फूलचन्द्र— ठीक है तू नहीं मानता, तो जो तुझे समझ में आवे सो कर।

बुद्धूराम— कुछ रुपया लेकर विदेश कमाने के लिए चला गया।

एक दिन फूलचन्द्र खेत पर कुआँ के पास कुछ काम कर रहा था। सेठ की बहू पानी भर रही थी तभी पड़ौसिन ने रोना प्रारम्भ कर दिया। बहू ने पूछा क्या बात है ? आपने रोना क्यों प्रारम्भ कर दिया ?

पड़ौसिन आज हमको विधवा हुए एक वर्ष हो गया। इसलिए रोना आ गया । बहु ने समझाते हुए कहा— जो होना था सो हो गया अब रोने से क्या लाभ है?

पड़ौसिन— एक-एक दिन अकेले काटे नहीं कटते।

बहू— आप तो पति के मरण होने पर विधवा है हम तो पति होने पर भी विधवा का जीवन जी रहे हैं।

सेठ फूलचन्द्र ने सुना तो अवाक् रह गया। घर जाकर बेटे को पत्र लिखा। बेटा बुद्धू तेरी पत्नी विधवा हो गई है। अब तो घर आ जा। पत्र पाते ही बुद्धू रोना प्रारम्भ करता है।

पड़ौसी— अरे ! बुद्धू क्या बात है तू क्यों रो रहा है ?

बुद्धूराम— रोते हुए मेरी पत्नि विधवा हो गई।

पड़ौसी— अरे ! बुद्धू कैसी बात कर रहा है। तेरे होते हुए तेरी पत्नि विधवा कैसे सकती है।

बुद्धूराम— यह देखो, पिताजी का पत्र आया है। उसमें लिखा है तुम्हारी पत्नि विधवा हो गई है।

पड़ौसी— किसी कारण से लिख दिया होगा; किंतु तेरे होते तेरी पत्नि विधवा नहीं हो सकती है।

बुद्धूराम— पुनः रोते हुए, हाय राम ! मेरी पत्नी विधवा हो गई। अब मैं क्या करूँगा।

तेजो मौसी— अरे बुद्धूराम ! तू कल से रोये जा रहा है। देखे तो क्या हालत हो रही है ? न कुछ खाया न कुछ पिया बस रोये जा रहा है। चल उठ मेरे घर चल पहले खाना खाले फिर बात करेंगे।

बुद्धूराम— हाय मौसी ! मेरी पत्नि विधवा हो गई। अब मैं क्या करूँगा।

तेजो मौसी— अरे पागल ! कैसी ये फिजूल की बातें करता है। पत्नि विधवा हो गई कि मैं कह रही हूँ तेरे होते तेरी पत्नि विधवा नहीं हो सकती है ? लेकिन तू है कि किसी की सुनता ही नहीं।

बुद्धूराम— खीझते हुए, हाँ मेरे होते मेरी बुआ विधवा हो गई। दादी विधवा हो गई, मौसी विधवा हो गई, बड़ी माँ विधवा हो गई तो मेरी पत्नि विधवा कैसे नहीं हो सकती। (हंसी)

(बुद्धूराम का विदेश से घर आना)

बुद्धूराम रोते हुए, माता-पिता से मिला और कहा हाय पिताजी हाय पिताजी ! मेरी पत्नी विधवा हो गई।

हाय माताजी ! मेरी पत्नि विधवा हो गई माताजी आश्चर्यपूर्वक अरे बुद्धू ! तू कैसी बातें कर रहा है क्या पागल हो गया ?

बुद्धूराम— हाय माताजी मेरी पत्नि विधवा हो गई। अब मेरा क्या होगा।

माताजी— नई रे ! तेरी पत्नी तो अंदर है ना वह विधवा नहीं हुई। तू जो है ना।

बुद्धूराम— प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नी के पास जाकर गले लगाता है और आराम से रहने लगता है। कुछ दिनों पश्चात् पिता का मरण हो गया तब बुद्धूराम फूट-फूटकर रो रहा था।

पड़ौसी— समझाते हुए अरे ! बुद्धू जो होना था सो हो गया अब धैर्य धारण कर और अपनी माँ तथा पत्नि को सम्हाल।

बुद्धूराम— मेरे पिताजी मर गये अब हमको कौन सम्हालेगा।

पड़ौसी— कोई बात नहीं बेटा। तेरा पिता मर गया हम तो तेरे पिता है चिंता क्यों करता है ?

(शांत होकर रहने लगता है कुछ दिनों पश्चात् माँ का मरण हो गया)

बुद्धूराम— हाय ! मेरी माँ मर गई, अब मैं क्या करूँगा।

पड़ौसी— आकर समझाते हुए जो होना था सो गया। अब रोने से क्या लाभ है बेटा शांत हो जा।

बुद्धूराम— हाय ! मेरी माँ नहीं रही। अब मेरे लिए कौन समझायेगा।

पड़ौसिन— बेटा कोई बात नहीं है। अरे ! माँ मर गई तो आने वाली नहीं है। हम तो है तेरी माँ जब कोई परेशानी हो हमको याद कर लेना हम तुम्हारी सहायता करेंगे।

बुद्धूराम— ठीक है।

कुछ समय बाद (पश्चात्) पत्नी का मरण हो गया। पुनः बुद्धूराम रोना प्रारम्भ करता है।

बुद्धूराम— हाय राम ! मेरी पत्नी मर गई। अब मेरा क्या होगा ? कौन बनायेगा कौन खिलायेगा ?

पड़ौसिन— बुद्धूराम शांत हो जाओ। जो होनहार थी सो हो गई। जो चला गया वह लौटकर वापिस नहीं आयेगा। अब रोने से क्या फायदा (लाभ)।

बुद्धूराम— और अधिक जोर-जोर से रोता है और दिन भर निकल जाता है। तभी टुनटुन दाई— अरे ! बबूआ कल से रोने में लगा है न कुछ खाया न कुछ पिया। बस रोने में लगा है। पत्नी के साथ में मरेगा क्या, चल उठ घर चल भोजन कर और भूल जा कोई था भी।

बुद्धूराम— अब और अधिक जोर-जोर से रोकर हाय दैईया ! मेरी पत्नी मर गई। अब मेरा क्या होगा ?

टुनटुन दाई— अरे ! बुद्धू क्या बात है । तेरी माँ मरी तब इतना नहीं रोया। पिता मरा तब इतना नहीं रोया। भाभी मरी तब इतना नहीं रोया, जितना पत्नि के मरने पर रो रहा है।

बुद्धूराम— रोते हुए दाई जब पिताजी मरे तो अनेक लोग आये थे। कोई बात नहीं बेटा। पिता मर गया तो क्या कर सकते। हम लोग तेरे पिता है। माँ मरी थी तो अनेक माताएँ आई थी कि कोई बात नहीं बेटा, माँ मर गई चिंता न कर हम तो हैं तेरी माँ। किंतु आज पत्नी के मरने पर कोई नहीं कहने वाला आया कि बुद्धू चिंता न कर पत्नि मर गई है तो कोई बात नहीं हम तो है। (हंसी)

बुद्धू की बुद्धि पर सभी तरस खाते है हे भगवन् ! ऐसी बुद्धि किसी की न हो।